॥श्रीराम॥

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासविरचित

॥ श्रीरामचरितमानस ॥

॥श्रीहरिः॥

श्रीरामचरितमानस की विषय-सूची

लंकाकाण्ड

- मंगलाचरण
- नल-नील द्वारा पुल बाँधना, श्री रामजी द्वारा श्री रामेश्वर की स्थापना
- श्री रामजी का सेना सहित समुद्र पार उतरना, सुबेल पर्वत पर निवास, रावण की व्याकुलता
- रावण को मन्दोदरी का समझाना, रावण-प्रहस्त संवाद
- सुबेल पर श्री रामजी की झाँकी और चंद्रोदय वर्णन
- श्री रामजी के बाण से रावण के मुकुट-छत्रादि का गिरना
- मन्दोदरी का फिर रावण को समझाना और श्री राम की महिमा कहना
- अंगदजी का लंका जाना और रावण की सभा में अंगद-रावण संवाद
- रावण को पुनः मन्दोदरी का समझाना
- अंगद-राम संवाद, युद्ध की तैयारी
- युद्धारम्भ
- माल्यवान का रावण को समझाना
- लक्ष्मण-मेघनाद युद्ध, लक्ष्मणजी को शक्ति लगना
- हनुमानजी का सुषेण वैद्य को लाना एवं संजीवनी के लिए जाना, कालनेमि-रावण संवाद, मकरी उद्धार, कालनेमि उद्धार
- भरतजी के बाण से हनुमान् का मूर्च्छित होना, भरत-हनुमान् संवाद
- श्री रामजी की प्रलापलीला, हनुमान्‌जी का लौटना, लक्ष्मणजी का उठ बैठना
- रावण का कुम्भकर्ण को जगाना, कुम्भकर्ण का रावण को उपदेश और विभीषण-कुम्भकर्ण संवाद
- कुम्भकर्ण युद्ध और उसकी परमगति
- मेघनाद का युद्ध, रामजी का लीला से नागपाश में बँधना
- मेघनाद यज्ञ विध्वंस, युद्ध और मेघनाद उद्धार
- रावण का युद्ध के लिए प्रस्थान और श्री रामजी का विजयरथ तथा वानर-राक्षसों का युद्ध
- लक्ष्मण-रावण युद्ध
- रावण मूर्च्छा, रावण यज्ञ विध्वंस, राम-रावण युद्ध
- इंद्र का श्री रामजी के लिए रथ भेजना, राम-रावण युद्ध
- रावण का विभीषण पर शक्ति छोड़ना, रामजी का शक्ति को अपने ऊपर लेना, विभीषण-रावण युद्ध
- रावण-हनुमान् युद्ध, रावण का माया रचना, रामजी द्वारा माया नाश

- घोरयुद्ध, रावण की मूर्च्छा
- त्रिजटा-सीता संवाद
- रावण का मूर्च्छा टूटना, राम-रावण युद्ध, रावण वध, सर्वत्र जयध्वनि
- मन्दोदरी-विलाप, रावण की अन्त्येष्टि क्रिया
- विभीषण का राज्याभिषेक
- हनुमान्‌जी का सीताजी को कुशल सुनाना, सीताजी का आगमन और अग्नि परीक्षा
- देवताओं की स्तुति, इंद्र की अमृत वर्षा
- विभीषण की प्रार्थना, श्री रामजी के द्वारा भरतजी की प्रेमदशा का वर्णन, शीघ्र अयोध्या पहुँचने का अनुरोध
- विभीषण का वस्त्राभूषण बरसाना और वानर-भालुओं का उन्हें पहनना
- पुष्पक विमान पर चढ़कर श्री सीता-रामजी का अवध के लिए प्रस्थान, श्री रामचरित्र की महिमा

श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

॥ श्रीरामचरितमानस ॥

षष्ठ सोपान

॥ लंकाकाण्ड ॥

श्लोक :

रामं कामारिसेव्यं भवभयहरणं कालमत्तेभसिंहं
योगीन्द्रं ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम्।
मायातीतं सुरेशं खलवधनिरतं ब्रह्मवृन्दैकदेवं
वन्दे कंदावदातं सरसिजनयनं देवमुर्वीशरूपम्॥1॥

कामदेव के शत्रु शिवजी के सेव्य, भव (जन्म-मृत्यु) के भय को हरने वाले, काल रूपी मतवाले हाथी के लिए सिंह के समान, योगियों के स्वामी (योगीश्वर), ज्ञान के द्वारा जानने योग्य, गुणों की निधि, अजेय, निर्गुण, निर्विकार, माया से परे, देवताओं के स्वामी, दुष्टों के वध में तत्पर, ब्राह्मणवृन्द के एकमात्र देवता (रक्षक), जल वाले मेघ के समान सुंदर श्याम, कमल के से नेत्र वाले, पृथ्वीपति (राजा) के रूप में परमदेव श्री रामजी की मैं वंदना करता हूँ॥1॥

शंखेन्द्वाभमतीवसुन्दरतनुं शार्दूलचर्माम्बरं
कालव्यालकरालभूषणधरं गंगाशशांकप्रियम्।
काशीशं कलिकल्मषौघशमनं कल्याणकल्पद्रुमं

नौमीड्यं गिरिजापतिं गुणनिधिं कंदर्पहं शंकरम्॥2॥

शंख और चंद्रमा की सी कांति के अत्यंत सुंदर शरीर वाले, व्याघ्रचर्म के वस्त्र वाले, काल के समान (अथवा काले रंग के) भयानक सर्पों का भूषण धारण करने वाले, गंगा और चंद्रमा के प्रेमी, काशीपति, कलियुग के पाप समूह का नाश करने वाले, कल्याण के कल्पवृक्ष, गुणों के निधान और कामदेव को भस्म करने वाले, पार्वती पति वन्दनीय श्री शंकरजी को मैं नमस्कार करता हूँ॥2॥

यो ददाति सतां शम्भुः कैवल्यमपि दुर्लभम्।
खलानां दण्डकृद्योऽसौ शंकरः शं तनोतु मे॥3॥

जो सत् पुरुषों को अत्यंत दुर्लभ कैवल्यमुक्ति तक दे डालते हैं और जो दुष्टों को दण्ड देने वाले हैं, वे कल्याणकारी श्री शम्भु मेरे कल्याण का विस्तार करें॥3॥

दोहा :

लव निमेष परमानु जुग बरष कलप सर चंड।
भजसि न मन तेहि राम को कालु जासु कोदंड॥

लव, निमेष, परमाणु, वर्ष, युग और कल्प जिनके प्रचण्ड बाण हैं और काल जिनका धनुष है, हे मन! तू उन श्री रामजी को क्यों नहीं भजता?

सोरठा :

सिंधु बचन सुनि राम सचिव बोलि प्रभु अस कहेउ।
अब बिलंबु केहि काम करहु सेतु उतरै कटकु॥

समुद्र के वचन सुनकर प्रभु श्री रामजी ने मंत्रियों को बुलाकर ऐसा कहा- अब विलंब किसलिए हो रहा है? सेतु (पुल) तैयार करो, जिसमें सेना उतरे।

सुनहु भानुकुल केतु जामवंत कर जोरि कह।
नाथ नाम तव सेतु नर चढ़ि भव सागर तरहिं॥

जाम्बवान् ने हाथ जोड़कर कहा- हे सूर्यकुल के ध्वजास्वरूप (कीर्ति को बढ़ाने वाले) श्री रामजी! सुनिए। हे नाथ! (सबसे बड़ा) सेतु तो आपका नाम ही है, जिस पर चढ़कर (जिसका आश्रय लेकर) मनुष्य संसार रूपी समुद्र से पार हो जाते हैं।

चौपाई :

यह लघु जलधि तरत कति बारा। अस सुनि पुनि कह पवनकुमारा॥
प्रभु प्रताप बड़वानल भारी। सोषेउ प्रथम पयोनिधि बारी॥1॥

फिर यह छोटा सा समुद्र पार करने में कितनी देर लगेगी? ऐसा सुनकर फिर पवनकुमार श्री

हनुमान्‌जी ने कहा- प्रभु का प्रताप भारी बड़वानल (समुद्र की आग) के समान है। इसने पहले समुद्र के जल को सोख लिया था,॥1॥

तव रिपु नारि रुदन जल धारा। भरेउ बहोरि भयउ तेहिं खारा॥
सुनि अति उकुति पवनसुत केरी। हरषे कपि रघुपति तन हेरी॥2॥

परन्तु आपके शत्रुओं की स्त्रियों के आँसुओं की धारा से यह फिर भर गया और उसी से खारा भी हो गया। हनुमान्‌जी की यह अत्युक्ति (अलंकारपूर्ण युक्ति) सुनकर वानर श्री रघुनाथजी की ओर देखकर हर्षित हो गए॥2॥

जामवंत बोले दोउ भाई। नल नीलहि सब कथा सुनाई॥
राम प्रताप सुमिरि मन माहीं। करहु सेतु प्रयास कछु नाहीं॥3॥

जाम्बवान्‌ ने नल-नील दोनों भाइयों को बुलाकर उन्हें सारी कथा कह सुनाई (और कहा-) मन में श्री रामजी के प्रताप को स्मरण करके सेतु तैयार करो, (रामप्रताप से) कुछ भी परिश्रम नहीं होगा॥3॥

बोलि लिए कपि निकर बहोरी। सकल सुनहु बिनती कछु मोरी॥
राम चरन पंकज उर धरहू। कौतुक एक भालु कपि करहू॥4॥

फिर वानरों के समूह को बुला लिया (और कहा-) आप सब लोग मेरी कुछ विनती सुनिए। अपने हृदय में श्री रामजी के चरण-कमलों को धारण कर लीजिए और सब भालू और वानर एक खेल कीजिए॥4॥

धावहु मर्कट बिकट बरूथा। आनहु बिटप गिरिन्ह के जूथा॥
सुनि कपि भालु चले करि हूहा। जय रघुबीर प्रताप समूहा॥5॥

विकट वानरों के समूह (आप) दौड़ जाइए और वृक्षों तथा पर्वतों के समूहों को उखाड़ लाइए। यह सुनकर वानर और भालू हूह (हुँकार) करके और श्री रघुनाथजी के प्रताप समूह की (अथवा प्रताप के पुंज श्री रामजी की) जय पुकारते हुए चले॥5॥

दोहा :

अति उतंग गिरि पादप लीलहिं लेहिं उठाइ।
आनि देहिं नल नीलहि रचहिं ते सेतु बनाइ॥1॥

बहुत ऊँचे-ऊँचे पर्वतों और वृक्षों को खेल की तरह ही (उखाड़कर) उठा लेते हैं और ला-लाकर नल-नील को देते हैं। वे अच्छी तरह गढ़कर (सुंदर) सेतु बनाते हैं॥1॥

चौपाई :

सैल बिसाल आनि कपि देहीं। कंदुक इव नल नील ते लेहीं॥

देखि सेतु अति सुंदर रचना। बिहसि कृपानिधि बोले बचना॥1॥
वानर बड़े-बड़े पहाड़ ला-लाकर देते हैं और नल-नील उन्हें गेंद की तरह ले लेते हैं। सेतु की अत्यंत सुंदर रचना देखकर कृपासिन्धु श्री रामजी हँसकर वचन बोले-॥1॥

परम रम्य उत्तम यह धरनी। महिमा अमित जाइ नहिं बरनी॥
करिहउँ इहाँ संभु थापना। मोरे हृदयँ परम कलपना॥2॥
यह (यहाँ की) भूमि परम रमणीय और उत्तम है। इसकी असीम महिमा वर्णन नहीं की जा सकती। मैं यहाँ शिवजी की स्थापना करूँगा। मेरे हृदय में यह महान् संकल्प है॥2॥

सुनि कपीस बहु दूत पठाए। मुनिबर सकल बोलि लै आए॥
लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा॥3॥
श्री रामजी के वचन सुनकर वानरराज सुग्रीव ने बहुत से दूत भेजे, जो सब श्रेष्ठ मुनियों को बुलाकर ले आए। शिवलिंग की स्थापना करके विधिपूर्वक उसका पूजन किया (फिर भगवान बोले-) शिवजी के समान मुझको दूसरा कोई प्रिय नहीं है॥3॥

सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा॥
संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी॥4॥
जो शिव से द्रोह रखता है और मेरा भक्त कहलाता है, वह मनुष्य स्वप्न में भी मुझे नहीं पाता। शंकरजी से विमुख होकर (विरोध करके) जो मेरी भक्ति चाहता है, वह नरकगामी, मूर्ख और अल्पबुद्धि है॥4॥

दोहा :

संकरप्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास॥2॥
जिनको शंकरजी प्रिय हैं, परन्तु जो मेरे द्रोही हैं एवं जो शिवजी के द्रोही हैं और मेरे दास (बनना चाहते) हैं, वे मनुष्य कल्पभर घोर नरक में निवास करते हैं॥2॥

चौपाई :

जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं॥
जो गंगाजलु आनि चढ़ाइहि। सो साजुज्य मुक्ति नर पाइहि॥1॥
जो मनुष्य (मेरे स्थापित किए हुए इन) रामेश्वरजी का दर्शन करेंगे, वे शरीर छोड़कर मेरे लोक को जाएँगे और जो गंगाजल लाकर इन पर चढ़ावेगा, वह मनुष्य सायुज्य मुक्ति पावेगा (अर्थात् मेरे साथ एक हो जाएगा)॥1॥

होइ अकाम जो छल तजि सेइहि। भगति मोरि तेहि संकर देइहि॥

मम कृत सेतु जो दरसनु करिही। सो बिनु श्रम भवसागर तरिही॥2॥

जो छल छोड़कर और निष्काम होकर श्री रामेश्वरजी की सेवा करेंगे, उन्हें शंकरजी मेरी भक्ति देंगे और जो मेरे बनाए सेतु का दर्शन करेगा, वह बिना ही परिश्रम संसार रूपी समुद्र से तर जाएगा॥2॥

राम बचन सब के जिय भाए। मुनिबर निज निज आश्रम आए॥
गिरिजा रघुपति कै यह रीती। संतत करहिं प्रनत पर प्रीती॥3॥

श्री रामजी के वचन सबके मन को अच्छे लगे। तदनन्तर वे श्रेष्ठ मुनि अपने-अपने आश्रमों को लौट आए। (शिवजी कहते हैं-) हे पार्वती! श्री रघुनाथजी की यह रीति है कि वे शरणागत पर सदा प्रीति करते हैं॥3॥

बाँधा सेतु नील नल नागर। राम कृपाँ जसु भयउ उजागर॥
बूडहिं आनहि बोरहिं जेई। भए उपल बोहित सम तेई॥4॥

चतुर नल और नील ने सेतु बाँधा। श्री रामजी की कृपा से उनका यह (उज्ज्वल) यश सर्वत्र फैल गया। जो पत्थर आप डूबते हैं और दूसरों को डुबा देते हैं, वे ही जहाज के समान (स्वयं तैरने वाले और दूसरों को पार ले जाने वाले) हो गए॥4॥

महिमा यह न जलधि कइ बरनी। पाहन गुन न कपिन्ह कइ करनी॥5॥

यह न तो समुद्र की महिमा वर्णन की गई है, न पत्थरों का गुण है और न वानरों की ही कोई करामात है॥5॥

दोहा :

श्री रघुबीर प्रताप ते सिंधु तरे पाषान।
ते मतिमंद जे राम तजि भजहिं जाइ प्रभु आन॥3॥

श्री रघुवीर के प्रताप से पत्थर भी समुद्र पर तैर गए। ऐसे श्री रामजी को छोड़कर जो किसी दूसरे स्वामी को जाकर भजते हैं वे (निश्चय ही) मंदबुद्धि हैं॥3॥

चौपाई :

बाँधि सेतु अति सुदृढ़ बनावा। देखि कृपानिधि के मन भावा॥
चली सेन कछु बरनि न जाई। गर्जहिं मर्कट भट समुदाई॥1॥

नल-नील ने सेतु बाँधकर उसे बहुत मजबूत बनाया। देखने पर वह कृपानिधान श्री रामजी के मन को (बहुत ही) अच्छा लगा। सेना चली, जिसका कुछ वर्णन नहीं हो सकता। योद्धा वानरों के समुदाय गरज रहे हैं॥1॥

सेतुबंध ढिग चढ़ि रघुराई। चितव कृपाल सिंधु बहुताई॥

देखन कहुँ प्रभु करुना कंदा। प्रगट भए सब जलचर बृंदा॥2॥

कृपालु श्री रघुनाथजी सेतुबन्ध के तट पर चढ़कर समुद्र का विस्तार देखने लगे। करुणाकन्द (करुणा के मूल) प्रभु के दर्शन के लिए सब जलचरों के समूह प्रकट हो गए (जल के ऊपर निकल आए)॥2॥

मकर नक्र नाना झष ब्याला। सत जोजन तन परम बिसाला॥
अइसेउ एक तिन्हहि जे खाहीं। एकन्ह कें डर तेपि डेराहीं॥3॥

बहुत तरह के मगर, नाक (घड़ियाल), मच्छ और सर्प थे, जिनके सौ-सौ योजन के बहुत बड़े विशाल शरीर थे। कुछ ऐसे भी जन्तु थे, जो उनको भी खा जाएँ। किसी-किसी के डर से तो वे भी डर रहे थे॥3॥

प्रभुहि बिलोकहिं टरहिं न टारे। मन हरषित सब भए सुखारे॥
तिन्ह कीं ओट न देखिअ बारी। मगन भए हरि रूप निहारी॥4॥

वे सब (वैर-विरोध भूलकर) प्रभु के दर्शन कर रहे हैं, हटाने से भी नहीं हटते। सबके मन हर्षित हैं, सब सुखी हो गए। उनकी आड़ के कारण जल नहीं दिखाई पड़ता। वे सब भगवान् का रूप देखकर (आनंद और प्रेम में) मग्न हो गए॥4॥

चला कटकु प्रभु आयसु पाई। को कहि सक कपि दल बिपुलाई॥5॥

प्रभु श्री रामचंद्रजी की आज्ञा पाकर सेना चली। वानर सेना की विपुलता (अत्यधिक संख्या) को कौन कह सकता है?॥5॥

दोहा :

सेतुबंध भइ भीर अति कपि नभ पंथ उड़ाहिं।
अपर जलचरन्हि ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहि जाहिं॥4॥

सेतुबन्ध पर बड़ी भीड़ हो गई, इससे कुछ वानर आकाश मार्ग से उड़ने लगे और दूसरे (कितने ही) जलचर जीवों पर चढ़-चढ़कर पार जा रहे हैं॥4॥

चौपाई :

अस कौतुक बिलोकि द्वौ भाई। बिहँसि चले कृपाल रघुराई॥
सेन सहित उतरे रघुबीरा। कहि न जाइ कपि जूथप भीरा॥1॥

कृपालु रघुनाथजी (तथा लक्ष्मणजी) दोनों भाई ऐसा कौतुक देखकर हँसते हुए चले। श्री रघुवीर सेना सहित समुद्र के पार हो गए। वानरों और उनके सेनापतियों की भीड़ कही नहीं जा सकती॥1॥

सिंधु पार प्रभु डेरा कीन्हा। सकल कपिन्ह कहुँ आयसु दीन्हा॥
खाहु जाइ फल मूल सुहाए। सुनत भालू कपि जहँ तहँ धाए॥2॥
प्रभु ने समुद्र के पार डेरा डाला और सब वानरों को आज्ञा दी कि तुम जाकर सुंदर फल-मूल खाओ। यह सुनते ही रीछ-वानर जहाँ-तहाँ दौड़ पड़े॥2॥

सब तरु फरे राम हित लागी। रितु अरु कुरितु काल गति त्यागी॥
खाहिं मधुर फल बिटप हलावहिं। लंका सन्मुख सिखर चलावहिं॥3॥
श्री रामजी के हित (सेवा) के लिए सब वृक्ष ऋतु-कुऋतु- समय की गति को छोड़कर फल उठे। वानर-भालू मीठे फल खा रहे हैं, वृक्षों को हिला रहे हैं और पर्वतों के शिखरों को लंका की ओर फेंक रहे हैं॥3॥

जहँ कहुँ फिरत निसाचर पावहिं। घेरि सकल बहु नाच नचावहिं॥
दसनन्हि काटि नासिका काना। कहि प्रभु सुजसु देहिं तब जाना॥4॥
घूमते-घूमते जहाँ कहीं किसी राक्षस को पा जाते हैं तो सब उसे घेरकर खूब नाच नचाते हैं और दाँतों से उसके नाक-कान काटकर, प्रभु का सुयश कहकर (अथवा कहलाकर) तब उसे जाने देते हैं॥4॥

जिन्ह कर नासा कान निपाता। तिन्ह रावनहि कही सब बाता॥
सुनत श्रवन बारिधि बंधाना। दस मुख बोलि उठा अकुलाना॥5॥
जिन राक्षसों के नाक और कान काट डाले गए, उन्होंने रावण से सब समाचार कहा। समुद्र (पर सेतु) का बाँधा जाना कानों से सुनते ही रावण घबड़ाकर दसों मुखों से बोल उठा-॥5॥

दोहा :
बाँध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस।
सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस॥5॥
वननिधि, नीरनिधि, जलधि, सिंधु, वारीश, तोयनिधि, कंपति, उदधि, पयोधि, नदीश को क्या सचमुच ही बाँध लिया?॥5॥

चौपाई :
निज बिकलता बिचारि बहोरी॥ बिहँसि गयउ गृह करि भय भोरी॥
मंदोदरीं सुन्यो प्रभु आयो। कौतुकहीं पाथोधि बँधायो॥1॥
फिर अपनी व्याकुलता को समझकर (ऊपर से) हँसता हुआ, भय को भुलाकर, रावण महल को गया। (जब) मंदोदरी ने सुना कि प्रभु श्री रामजी आ गए हैं और उन्होंने खेल में ही समुद्र को बँधवा लिया है,॥1॥

कर गहि पतिहि भवन निज आनी। बोली परम मनोहर बानी॥
चरन नाइ सिरु अंचलु रोपा। सुनहु बचन पिय परिहरि कोपा॥2॥

(तब) वह हाथ पकड़कर, पति को अपने महल में लाकर परम मनोहर वाणी बोली। चरणों में सिर नवाकर उसने अपना आँचल पसारा और कहा- हे प्रियतम! क्रोध त्याग कर मेरा वचन सुनिए॥2॥

नाथ बयरु कीजे ताही सों। बुधि बल सकिअ जीति जाही सों॥
तुम्हहि रघुपतिहि अंतर कैसा। खलु खद्योत दिनकरहि जैसा॥3॥

हे नाथ! वैर उसी के साथ करना चाहिए, जिससे बुद्धि और बल के द्वारा जीत सकें। आप में और श्री रघुनाथजी में निश्चय ही कैसा अंतर है, जैसा जुगनू और सूर्य में!॥3॥

अति बल मधु कैटभ जेहिं मारे। महाबीर दितिसुत संघारे॥
जेहिं बलि बाँधि सहस भुज मारा। सोइ अवतरेउ हरन महि भारा॥4॥

जिन्होंने (विष्णु रूप से) अत्यन्त बलवान् मधु और कैटभ (दैत्य) मारे और (वराह और नृसिंह रूप से) महान् शूरवीर दिति के पुत्रों (हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु) का संहार किया, जिन्होंने (वामन रूप से) बलि को बाँधा और (परशुराम रूप से) सहस्रबाहु को मारा, वे ही (भगवान्) पृथ्वी का भार हरण करने के लिए (रामरूप में) अवतीर्ण (प्रकट) हुए हैं!॥4॥

तासु बिरोध न कीजिअ नाथा। काल करम जिव जाकें हाथा॥5॥

हे नाथ! उनका विरोध न कीजिए, जिनके हाथ में काल, कर्म और जीव सभी हैं॥5॥

दोहा :

रामहि सौंपि जानकी नाइ कमल पद माथ।
सुत कहुँ राज समर्पि बन जाइ भजिअ रघुनाथ॥6॥

(श्री रामजी) के चरण कमलों में सिर नवाकर (उनकी शरण में जाकर) उनको जानकीजी सौंप दीजिए और आप पुत्र को राज्य देकर वन में जाकर श्री रघुनाथजी का भजन कीजिए॥6॥

चौपाई :

नाथ दीनदयाल रघुराई। बाघउ सनमुख गएँ न खाई॥
चाहिअ करन सो सब करि बीते। तुम्ह सुर असुर चराचर जीते॥1॥

हे नाथ! श्री रघुनाथजी तो दीनों पर दया करने वाले हैं। सम्मुख (शरण) जाने पर तो बाघ भी नहीं खाता। आपको जो कुछ करना चाहिए था, वह सब आप कर चुके। आपने देवता, राक्षस तथा चर-अचर सभी को जीत लिया॥1॥

संत कहहिं असि नीति दसानन। चौथेंपन जाइहि नृप कानन॥

तासु भजनु कीजिअ तहँ भर्ता। जो कर्ता पालक संहर्ता॥2॥

हे दशमुख! संतजन ऐसी नीति कहते हैं कि चौथेपन (बुढ़ापे) में राजा को वन में चला जाना चाहिए। हे स्वामी! वहाँ (वन में) आप उनका भजन कीजिए जो सृष्टि के रचने वाले, पालने वाले और संहार करने वाले हैं॥2॥

सोइ रघुबीर प्रनत अनुरागी। भजहु नाथ ममता सब त्यागी॥
मुनिबर जतनु करहिं जेहि लागी। भूप राजु तजि होहिं बिरागी॥3॥

हे नाथ! आप विषयों की सारी ममता छोड़कर उन्हीं शरणागत पर प्रेम करने वाले भगवान् का भजन कीजिए। जिनके लिए श्रेष्ठ मुनि साधन करते हैं और राजा राज्य छोड़कर वैरागी हो जाते हैं-॥3॥

सोइ कोसलाधीस रघुराया। आयउ करन तोहि पर दाया॥
जौं पिय मानहु मोर सिखावन। सुजसु होइ तिहुँ पुर अति पावन॥4॥

वही कोसलाधीश श्री रघुनाथजी आप पर दया करने आए हैं। हे प्रियतम! यदि आप मेरी सीख मान लेंगे, तो आपका अत्यंत पवित्र और सुंदर यश तीनों लोकों में फैल जाएगा॥4॥

दोहा :

अस कहि नयन नीर भरि गहि पद कंपित गात।
नाथ भजहु रघुनाथहि अचल होइ अहिवात॥7॥

ऐसा कहकर, नेत्रों में (करुणा का) जल भरकर और पति के चरण पकड़कर, काँपते हुए शरीर से मंदोदरी ने कहा- हे नाथ! श्री रघुनाथजी का भजन कीजिए, जिससे मेरा सुहाग अचल हो जाए॥7॥

चौपाई :

तब रावन मयसुता उठाई। कहै लाग खल निज प्रभुताई॥
सुनु तैं प्रिया बृथा भय माना। जग जोधा को मोहि समाना॥1॥

तब रावण ने मंदोदरी को उठाया और वह दुष्ट उससे अपनी प्रभुता कहने लगा- हे प्रिये! सुन, तूने व्यर्थ ही भय मान रखा है। बता तो जगत् में मेरे समान योद्धा है कौन?॥1॥

बरुन कुबेर पवन जम काला। भुज बल जितेउँ सकल दिगपाला॥
देव दनुज नर सब बस मोरें। कवन हेतु उपजा भय तोरें॥2॥

वरुण, कुबेर, पवन, यमराज आदि सभी दिक्पालों को तथा काल को भी मैंने अपनी भुजाओं के बल से जीत रखा है। देवता, दानव और मनुष्य सभी मेरे वश में हैं। फिर तुझको यह भय किस कारण उत्पन्न हो गया?॥2॥

नाना बिधि तेहि कहेसि बुझाई। सभाँ बहोरि बैठ सो जाई॥
मंदोदरीं हृदयँ अस जाना। काल बस्य उपजा अभिमाना॥3॥

मंदोदरी ने उसे बहुत तरह से समझाकर कहा (किन्तु रावण ने उसकी एक भी बात न सुनी) और वह फिर सभा में जाकर बैठ गया। मंदोदरी ने हृदय में ऐसा जान लिया कि काल के वश होने से पति को अभिमान हो गया है॥3॥

सभाँ आइ मंत्रिन्ह तेहिं बूझा। करब कवन बिधि रिपु सैं जूझा॥
कहहिं सचिव सुनु निसिचर नाहा। बार बार प्रभु पूछहु काहा॥4॥

सभा में आकर उसने मंत्रियों से पूछा कि शत्रु के साथ किस प्रकार से युद्ध करना होगा? मंत्री कहने लगे- हे राक्षसों के नाथ! हे प्रभु! सुनिए, आप बार-बार क्या पूछते हैं?॥4॥

कहहु कवन भय करिअ बिचारा। नर कपि भालु अहार हमारा॥5॥

कहिए तो (ऐसा) कौन-सा बड़ा भय है, जिसका विचार किया जाए? (भय की बात ही क्या है?) मनुष्य और वानर-भालू तो हमारे भोजन (की सामग्री) हैं॥

दोहा :

सब के बचन श्रवन सुनि कह प्रहस्त कर जोरि।
नीति बिरोध न करिअ प्रभु मंत्रिन्ह मति अति थोरि॥8॥

कानों से सबके वचन सुनकर (रावण का पुत्र) प्रहस्त हाथ जोड़कर कहने लगा- हे प्रभु! नीति के विरुद्ध कुछ भी नहीं करना चाहिए, मन्त्रियों में बहुत ही थोड़ी बुद्धि है॥8॥

कहहिं सचिव सठ ठकुर सोहाती। नाथ न पूर आव एहि भाँती॥
बारिधि नाघि एक कपि आवा। तासु चरित मन महुँ सबु गावा॥॥1॥

ये सभी मूर्ख (खुशामदी) मन्त्र ठकुरसुहाती (मुँहदेखी) कह रहे हैं। हे नाथ! इस प्रकार की बातों से पूरा नहीं पड़ेगा। एक ही बंदर समुद्र लाँघकर आया था। उसका चरित्र सब लोग अब भी मन-ही-मन गाया करते हैं (स्मरण किया करते हैं) ॥1॥

छुधा न रही तुम्हहि तब काहू। जारत नगरु कस न धरि खाहू॥
सुनत नीक आगें दुख पावा। सचिवन अस मत प्रभुहि सुनावा॥॥2॥

उस समय तुम लोगों में से किसी को भूख न थी? (बंदर तो तुम्हारा भोजन ही हैं, फिर) नगर जलाते समय उसे पकड़कर क्यों नहीं खा लिया? इन मन्त्रियों ने स्वामी (आप) को ऐसी सम्मति सुनायी है जो सुनने में अच्छी है पर जिससे आगे चलकर दुःख पाना होगा॥2॥

जेहिं बारीस बँधायउ हेला। उतरेउ सेन समेत सुबेला॥
सो भनु मनुज खाब हम भाई। बचन कहहिं सब गाल फुलाई॥3॥

जिसने खेल-ही-खेल में समुद्र बँधा लिया और जो सेना सहित सुबेल पर्वत पर आ उतरा है। हे भाई! कहो वह मनुष्य है, जिसे कहते हो कि हम खा लेंगे? सब गाल फुला-फुलाकर (पागलों की तरह) वचन कह रहे हैं!॥3॥

तात बचन मम सुनु अति आदर। जनि मन गुनहु मोहि करि कादर।
प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहहीं। ऐसे नर निकाय जग अहहीं॥4॥

हे तात! मेरे वचनों को बहुत आदर से (बड़े गौर से) सुनिए। मुझे मन में कायर न समझ लीजिएगा। जगत् में ऐसे मनुष्य झुंड-के-झुंड (बहुत अधिक) हैं, जो प्यारी (मुँह पर मीठी लगने वाली) बात ही सुनते और कहते हैं॥4॥

बचन परम हित सुनत कठोरे। सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे॥
प्रथम बसीठ पठउ सुनु नीती। सीता देइ करहु पुनि प्रीती॥5॥

हे प्रभो! सुनने में कठोर परन्तु (परिणाम में) परम हितकारी वचन जो सुनते और कहतेहैं,वे मनुष्य बहुत ही थोड़े हैं। नीति सुनिये, (उसके अनुसार) पहले दूत भेजिये, और (फिर) सीता को देकर श्रीरामजी से प्रीति (मेल) कर लीजिये॥5॥

दोहा :

नारि पाइ फिरि जाहिं जौं तौ न बढ़ाइअ रारि।
नाहिं त सन्मुख समर महि तात करिअ हठि मारि॥9॥

यदि वे स्त्री पाकर लौट जाएँ, तब तो (व्यर्थ) झगड़ा न बढ़ाइये। नहीं तो (यदि न फिरें तो) हे तात! सम्मुख युद्धभूमि में उनसे हठपूर्वक (डटकर) मार-काट कीजिए॥9॥

यह मत जौं मानहु प्रभु मोरा। उभय प्रकार सुजसु जग तोरा॥
सुत सन कह दसकंठ रिसाई। असि मति सठ केहिं तोहि सिखाई॥1॥

हे प्रभो! यदि आप मेरी यह सम्मति मानेंगे, तो जगत् में दोनों ही प्रकार से आपका सुयश होगा। रावण ने गुस्से में भरकर पुत्र से कहा- अरे मूर्ख! तुझे ऐसी बुद्धि किसने सिखायी?॥1॥

अबहीं ते उर संसय होई। बेनुमूल सुत भयहु घमोई॥
सुनि पितु गिरा परुष अति घोरा। चला भवन कहि बचन कठोरा॥2॥

अभी से हृदय में सन्देह (भय) हो रहा है? हे पुत्र! तू तो बाँस की जड़ में घमोई हुआ (तू मेरे वंश के अनुकूल या अनुरूप नहीं हुआ)। पिता की अत्यन्त घोर और कठोर वाणी सुनकर प्रहस्त ये कड़े वचन कहता हुआ घर को चला गया॥2॥

हित मत तोहि न लागत कैसें। काल बिबस कहुँ भेषज जैसें॥
संध्या समय जानि दससीसा। भवन चलेउ निरखत भुज बीसा॥3॥

हित की सलाह आपको कैसे नहीं लगती (आप पर कैसे असर नहीं करती), जैसे मृत्यु के वश हुए (रोगी) को दवा नहीं लगती। संध्या का समय जानकर रावण अपनी बीसों भुजाओं को देखता हुआ महल को चला॥3॥

लंका सिखर उपर आगारा। अति बिचित्र तहँ होइ अखारा॥
बैठ जाइ तेहिं मंदिर रावन। लागे किंनर गुन गन गावन॥4॥

लंका की चोटी पर एक अत्यन्त विचित्र महल था। वहाँ नाच-गान का अखाड़ा जमता था। रावण उस महल में जाकर बैठ गया। किन्नर उसके गुण समूहों को गाने लगे॥4॥

बाजहिं ताल पखाउज बीना। नृत्य करहिं अपछरा प्रबीना॥5॥

ताल (करताल), पखावज (मृदंग) और बीणा बज रहे हैं। नृत्य में प्रवीण अप्सराएँ नाच रही हैं॥5॥

दोहा :

सुनासीर सत सरिस सो संतत करइ बिलास।
परम प्रबल रिपु सीस पर तथपि सोच न त्रास॥10॥

वह निरन्तर सैकड़ों इन्द्रों के समान भोग-विलास करता रहता है। यद्यपि (श्रीरामजी-सरीखा) अत्यन्त प्रबल शत्रु सिर पर है, फिर भी उसको न तो चिन्ता है और न डर ही है॥10॥

चौपाई :

इहाँ सुबेल सैल रघुबीरा। उतरे सेन सहित अति भीरा॥
सिखर एक उतंग अति देखी। परम रम्य सम सुभ्र बिसेषी॥1॥

यहाँ श्री रघुवीर सुबेल पर्वत पर सेना की बड़ी भीड़ (बड़े समूह) के साथ उतरे। पर्वत का एक बहुत ऊँचा, परम रमणीय, समतल और विशेष रूप से उज्ज्वल शिखर देखकर-॥1॥

तहँ तरु किसलय सुमन सुहाए। लछिमन रचि निज हाथ डसाए॥
ता पर रुचिर मृदुल मृगछाला। तेहिं आसन आसीन कृपाला॥2॥

वहाँ लक्ष्मणजी ने वृक्षों के कोमल पत्ते और सुंदर फूल अपने हाथों से सजाकर बिछा दिए। उस पर सुंदर और कोमल मृग छाला बिछा दी। उसी आसन पर कृपालु श्री रामजी विराजमान थे॥2॥

प्रभु कृत सीस कपीस उछंगा। बाम दहिन दिसि चाप निषंगा
दुहुँ कर कमल सुधारत बाना। कह लंकेस मंत्र लगि काना॥3॥

प्रभु श्री रामजी वानरराज सुग्रीव की गोद में अपना सिर रखे हैं। उनकी बायीं ओर धनुष तथा दाहिनी ओर तरकस (रखा) है। वे अपने दोनों करकमलों से बाण सुधार रहे हैं। विभीषणजी कानों

से लगकर सलाह कर रहे हैं॥3॥

बड़भागी अंगद हनुमाना। चरन कमल चापत बिधि नाना॥
प्रभु पाछें लछिमन बीरासन। कटि निषंग कर बान सरासन॥4॥

परम भाग्यशाली अंगद और हनुमान अनेकों प्रकार से प्रभु के चरण कमलों को दबा रहे हैं। लक्ष्मणजी कमर में तरकस कसे और हाथों में धनुष-बाण लिए वीरासन से प्रभु के पीछे सुशोभित हैं॥4॥

दोहा :

ऐहि बिधि कृपा रूप गुन धाम रामु आसीन।
धन्य ते नर एहिं ध्यान जे रहत सदा लयलीन॥11 क॥

इस प्रकार कृपा, रूप (सौंदर्य) और गुणों के धाम श्री रामजी विराजमान हैं। वे मनुष्य धन्य हैं, जो सदा इस ध्यान में लौ लगाए रहते हैं॥11 (क)॥

पूरब दिसा बिलोकि प्रभु देखा उदित मयंक।
कहत सबहि देखहु ससिहि मृगपति सरिस असंक॥11 ख॥

पूर्व दिशा की ओर देखकर प्रभु श्री रामजी ने चंद्रमा को उदय हुआ देखा। तब वे सबसे कहने लगे- चंद्रमा को तो देखो। कैसा सिंह के समान निडर है!॥11 (ख)॥

चौपाई :

पूरब दिसि गिरिगुहा निवासी। परम प्रताप तेज बल रासी॥
मत्त नाग तम कुंभ बिदारी। ससि केसरी गगन बन चारी॥1॥

पूर्व दिशा रूपी पर्वत की गुफा में रहने वाला, अत्यंत प्रताप, तेज और बल की राशि यह चंद्रमा रूपी सिंह अंधकार रूपी मतवाले हाथी के मस्तक को विदीर्ण करके आकाश रूपी वन में निर्भय विचर रहा है॥1॥

बिथुरे नभ मुकुताहल तारा। निसि सुंदरी केर सिंगारा॥
कह प्रभु ससि महुँ मेचकताई। कहहु काह निज निज मति भाई॥2॥

आकाश में बिखरे हुए तारे मोतियों के समान हैं, जो रात्रि रूपी सुंदर स्त्री के श्रृंगार हैं। प्रभु ने कहा- भाइयो! चंद्रमा में जो कालापन है, वह क्या है? अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार कहो॥2॥

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। ससि महुँ प्रगट भूमि कै झाँई॥
मारेउ राहु ससिहि कह कोई। उर महँ परी स्यामता सोई॥3॥

सुग्रीव ने कहा- हे रघुनाथजी! सुनिए! चंद्रमा में पृथ्वी की छाया दिखाई दे रही है। किसी ने कहा- चंद्रमा को राहु ने मारा था। वही (चोट का) काला दाग हृदय पर पड़ा हुआ है॥3॥

कोउ कह जब बिधि रति मुख कीन्हा। सार भाग ससि कर हरि लीन्हा॥
छिद्र सो प्रगट इंदु उर माहीं। तेहि मग देखिअ नभ परिछाहीं॥4॥

कोई कहता है- जब ब्रह्मा ने (कामदेव की स्त्री) रति का मुख बनाया, तब उसने चंद्रमा का सार भाग निकाल लिया (जिससे रति का मुख तो परम सुंदर बन गया, परन्तु चंद्रमा के हृदय में छेद हो गया)। वही छेद चंद्रमा के हृदय में वर्तमान है, जिसकी राह से आकाश की काली छाया उसमें दिखाई पड़ती है॥4॥

प्रभु कह गरल बंधु ससि केरा। अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा॥
बिष संजुत कर निकर पसारी। जारत बिरहवंत नर नारी॥5॥

प्रभु श्री रामजी ने कहा- विष चंद्रमा का बहुत प्यारा भाई है, इसी से उसने विष को अपने हृदय में स्थान दे रखा है। विषयुक्त अपने किरण समूह को फैलाकर वह वियोगी नर-नारियों को जलाता रहता है॥5॥

दोहा :

कह हनुमंत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास।
तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास॥12 क॥

हनुमान्‌जी ने कहा- हे प्रभो! सुनिए, चंद्रमा आपका प्रिय दास है। आपकी सुंदर श्याम मूर्ति चंद्रमा के हृदय में बसती है, वही श्यामता की झलक चंद्रमा में है॥12 (क)॥

नवाह्नपारायण, सातवाँ विश्राम

पवन तनय के बचन सुनि बिहँसे रामु सुजान।
दच्छिन दिसि अवलोकि प्रभु बोले कृपा निधान॥12 ख॥

पवनपुत्र हनुमान्‌जी के वचन सुनकर सुजान श्री रामजी हँसे। फिर दक्षिण की ओर देखकर कृपानिधान प्रभु बोले-॥12 (ख)॥

चौपाई :

देखु बिभीषन दच्छिन आसा। घन घमंड दामिनी बिलासा॥
मधुर मधुर गरजइ घन घोरा। होइ बृष्टि जनि उपल कठोरा॥1॥

हे विभीषण! दक्षिण दिशा की ओर देखो, बादल कैसा घुमड़ रहा है और बिजली चमक रही है। भयानक बादल मीठे-मीठे (हल्के-हल्के) स्वर से गरज रहा है। कहीं कठोर ओलों की वर्षा न हो!॥1॥

कहत बिभीषन सुनहू कृपाला। होइ न तड़ित न बारिद माला॥

लंका सिखर उपर आगारा। तहँ दसकंधर देख अखारा॥2॥

विभीषण बोले- हे कृपालु! सुनिए, यह न तो बिजली है, न बादलों की घटा। लंका की चोटी पर एक महल है। दशग्रीव रावण वहाँ (नाच-गान का) अखाड़ा देख रहा है॥2॥

छत्र मेघडंबर सिर धारी। सोइ जनु जलद घटा अति कारी॥
मंदोदरी श्रवन ताटंका। सोइ प्रभु जनु दामिनी दमंका॥3॥

रावण ने सिर पर मेघडंबर (बादलों के डंबर जैसा विशाल और काला) छत्र धारण कर रखा है। वही मानो बादलों की काली घटा है। मंदोदरी के कानों में जो कर्णफूल हिल रहे हैं, हे प्रभो! वही मानो बिजली चमक रही है॥3॥

बाजहिं ताल मृदंग अनूपा। सोइ रव मधुर सुनहू सुरभूपा।
प्रभु मुसुकान समुझि अभिमाना। चाप चढ़ाव बान संधाना॥4॥

हे देवताओं के सम्राट! सुनिए, अनुपम ताल मृदंग बज रहे हैं। वही मधुर (गर्जन) ध्वनि है। रावण का अभिमान समझकर प्रभु मुस्कुराए। उन्होंने धनुष चढ़ाकर उस पर बाण का सन्धान किया॥4॥

दोहा :

छत्र मुकुट तांटक तब हते एकहीं बान।
सब कें देखत महि परे मरमु न कोऊ जान॥13 क॥

और एक ही बाण से (रावण के) छत्र-मुकुट और (मंदोदरी के) कर्णफूल काट गिराए। सबके देखते-देखते वे जमीन पर आ पड़े, पर इसका भेद (कारण) किसी ने नहीं जाना॥13 (क)॥

अस कौतुक करि राम सर प्रबिसेउ आई निषंग।
रावन सभा ससंक सब देखि महा रसभंग॥13 ख॥

ऐसा चमत्कार करके श्री रामजी का बाण (वापस) आकर (फिर) तरकस में जा घुसा। यह महान् रस भंग (रंग में भंग) देखकर रावण की सारी सभा भयभीत हो गई॥13 (ख)॥

चौपाई :

कंप न भूमि न मरुत बिसेषा। अस्त्र सस्त्र कछु नयन न देखा।
सोचहिं सब निज हृदय मझारी। असगुन भयउ भयंकर भारी॥1॥

न भूकम्प हुआ, न बहुत जोर की हवा (आँधी) चली। न कोई अस्त्र-शस्त्र ही नेत्रों से देखे। (फिर ये छत्र, मुकुट और कर्णफूल जैसे कटकर गिर पड़े?) सभी अपने-अपने हृदय में सोच रहे हैं कि यह बड़ा भयंकर अपशकुन हुआ!॥1॥

दसमुख देखि सभा भय पाई। बिहसि बचन कह जुगुति बनाई।

सिरउ गिरे संतत सुभ जाही। मुकुट परे कस असगुन ताही॥2॥

सभा को भयतीत देखकर रावण ने हँसकर युक्ति रचकर ये वचन कहे- सिरों का गिरना भी जिसके लिए निरंतर शुभ होता रहा है, उसके लिए मुकुट का गिरना अपशकुन कैसा?॥2॥

सयन करहु निज निज गृह जाईं। गवने भवन सकल सिर नाई॥
मंदोदरी सोच उर बसेऊ। जब ते श्रवनपूर महि खसेऊ॥3॥

अपने-अपने घर जाकर सो रहो (डरने की कोई बात नहीं है) तब सब लोग सिर नवाकर घर गए। जब से कर्णफूल पृथ्वी पर गिरा, तब से मंदोदरी के हृदय में सोच बस गया॥3॥

सजल नयन कह जुग कर जोरी। सुनहु प्रानपति बिनती मोरी॥
कंत राम बिरोध परिहरहू। जानि मनुज जनि हठ लग धरहू॥4॥

नेत्रों में जल भरकर, दोनों हाथ जोड़कर वह (रावण से) कहने लगी- हे प्राणनाथ! मेरी विनती सुनिए। हे प्रियतम! श्री राम से विरोध छोड़ दीजिए। उन्हें मनुष्य जानकर मन में हठ न पकड़े रहिए॥4॥

दोहा :

बिस्वरूप रघुबंस मनि करहु बचन बिस्वासु।
लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु॥14॥

मेरे इन वचनों पर विश्वास कीजिए कि ये रघुकुल के शिरोमणि श्री रामचंद्रजी विश्व रूप हैं- (यह सारा विश्व उन्हीं का रूप है)। वेद जिनके अंग-अंग में लोकों की कल्पना करते हैं॥14॥

चौपाई :

पद पाताल सीस अज धामा। अपर लोक अँग अँग बिश्रामा॥
भृकुटि बिलास भयंकर काला। नयन दिवाकर कच घन माला॥1॥

पाताल (जिन विश्व रूप भगवान् का) चरण है, ब्रह्म लोक सिर है, अन्य (बीच के सब) लोकों का विश्राम (स्थिति) जिनके अन्य भिन्न-भिन्न अंगों पर है। भयंकर काल जिनका भृकुटि संचालन (भौंहों का चलना) है। सूर्य नेत्र हैं, बादलों का समूह बाल है॥1॥

जासु घ्रान अस्विनीकुमारा। निसि अरु दिवस निमेष अपारा॥
श्रवन दिसा दस बेद बखानी। मारुत स्वास निगम निज बानी॥2॥

अश्विनी कुमार जिनकी नासिका हैं, रात और दिन जिनके अपार निमेष (पलक मारना और खोलना) हैं। दसों दिशाएँ कान हैं, वेद ऐसा कहते हैं। वायु श्वास है और वेद जिनकी अपनी वाणी है॥2॥

अधर लोभ जम दसन कराला। माया हास बाहु दिगपाला॥

आनन अनल अंबुपति जीहा। उतपति पालन प्रलय समीहा॥3॥

लोभ जिनका अधर (होठ) है, यमराज भयानक दाँत हैं। माया हँसी है, दिक्पाल भुजाएँ हैं। अग्नि मुख है, वरुण जीभ है। उत्पत्ति, पालन और प्रलय जिनकी चेष्टा (क्रिया) है॥3॥

रोम राजि अष्टादस भारा। अस्थि सैल सरिता नस जारा॥
उदर उदधि अधगो जातना। जगमय प्रभु का बहु कलपना॥4॥

अठारह प्रकार की असंख्य वनस्पतियाँ जिनकी रोमावली हैं, पर्वत अस्थियाँ हैं, नदियाँ नसों का जाल है, समुद्र पेट है और नरक जिनकी नीचे की इंद्रियाँ हैं। इस प्रकार प्रभु विश्वमय हैं, अधिक कल्पना (ऊहापोह) क्या की जाए?॥4॥

दोहा :

अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान।
मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान॥15 क॥

शिव जिनका अहंकार हैं, ब्रह्मा बुद्धि हैं, चंद्रमा मन हैं और महान (विष्णु) ही चित्त हैं। उन्हीं चराचर रूप भगवान श्री रामजी ने मनुष्य रूप में निवास किया है॥15 (क)॥

अस बिचारि सुनु प्रानपति प्रभु सन बयरु बिहाइ।
प्रीति करहु रघुबीर पद मम अहिवात न जाइ॥15 ख॥

हे प्राणपति सुनिए, ऐसा विचार कर प्रभु से वैर छोड़कर श्री रघुवीर के चरणों में प्रेम कीजिए, जिससे मेरा सुहाग न जाए॥15 (ख)॥

चौपाई :

बिहँसा नारि बचन सुनि काना। अहो मोह महिमा बलवाना॥
नारि सुभाउ सत्य सब कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं॥1॥

पत्नी के वचन कानों से सुनकर रावण खूब हँसा (और बोला-) अहो! मोह (अज्ञान) की महिमा बड़ी बलवान् है। स्त्री का स्वभाव सब सत्य ही कहते हैं कि उसके हृदय में आठ अवगुण सदा रहते हैं-॥1॥

साहस अनृत चपलता माया। भय अबिबेक असौच अदाया॥
रिपु कर रूप सकल तैं गावा। अति बिसाल भय मोहि सुनावा॥2॥

साहस, झूठ, चंचलता, माया (छल), भय (डरपोकपन) अविवेक (मूर्खता), अपवित्रता और निर्दयता। तूने शत्रु का समग्र (विराट) रूप गाया और मुझे उसका बड़ा भारी भय सुनाया॥2॥

सो सब प्रिया सहज बस मोरें। समुझि परा अब प्रसाद तोरें॥
जानिउँ प्रिया तोरि चतुराई। एहि बिधि कहहु मोरि प्रभुताई॥3॥

हे प्रिये! वह सब (यह चराचर विश्व तो) स्वभाव से ही मेरे वश में है। तेरी कृपा से मुझे यह अब समझ पड़ा। हे प्रिये! तेरी चतुराई मैं जान गया। तू इस प्रकार (इसी बहाने) मेरी प्रभुता का बखान कर रही है॥3॥

तव बतकही गूढ मृगलोचनि। समुझत सुखद सुनत भय मोचनि॥
मंदोदरि मन महुँ अस ठयऊ। पियहि काल बस मति भ्रम भयउ॥4॥

हे मृगनयनी! तेरी बातें बड़ी गूढ (रहस्यभरी) हैं, समझने पर सुख देने वाली और सुनने से भय छुड़ाने वाली हैं। मंदोदरी ने मन में ऐसा निश्चय कर लिया कि पति को कालवश मतिभ्रम हो गया है॥4॥

दोहा :

ऐहि बिधि करत बिनोद बहु प्रात प्रगट दसकंध।
सहज असंक लंकपति सभाँ गयउ मद अंध॥16 क॥

इस प्रकार (अज्ञानवश) बहुत से विनोद करते हुए रावण को सबेरा हो गया। तब स्वभाव से ही निडर और घमंड में अंधा लंकापति सभा में गया॥16 (क)॥

सोरठा :

फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरुख हृदयँ न चेत जौं गुर मिलहिं बिरंचि सम॥16 ख॥

यद्यपि बादल अमृत सा जल बरसाते हैं तो भी बेत फूलता-फलता नहीं। इसी प्रकार चाहे ब्रह्मा के समान भी ज्ञानी गुरु मिलें, तो भी मूर्ख के हृदय में चेत (ज्ञान) नहीं होता॥16 (ख)॥

चौपाई :

इहाँ प्रात जागे रघुराई। पूछा मत सब सचिव बोलाई॥
कहहु बेगि का करिअ उपाई। जामवंत कह पद सिरु नाई॥1॥

यहाँ (सुबेल पर्वत पर) प्रातःकाल श्री रघुनाथजी जागे और उन्होंने सब मंत्रियों को बुलाकर सलाह पूछी कि शीघ्र बताइए, अब क्या उपाय करना चाहिए? जाम्बवान् ने श्री रामजी के चरणों में सिर नवाकर कहा-॥1॥

सुनु सर्बग्य सकल उर बासी। बुधि बल तेज धर्म गुन रासी॥
मंत्र कहउँ निज मति अनुसारा। दूत पठाइअ बालि कुमारा॥2॥

हे सर्वज्ञ (सब कुछ जानने वाले)! हे सबके हृदय में बसने वाले (अंतर्यामी)! हे बुद्धि, बल, तेज, धर्म और गुणों की राशि! सुनिए! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार सलाह देता हूँ कि बालिकुमार अंगद को दूत बनाकर भेजा जाए!॥2॥

नीक मंत्र सब के मन माना। अंगद सन कह कृपानिधाना॥
बालितनय बुधि बल गुन धामा। लंका जाहु तात मम कामा॥3॥
यह अच्छी सलाह सबके मन में जँच गई। कृपा के निधान श्री रामजी ने अंगद से कहा- हे बल, बुद्धि और गुणों के धाम बालिपुत्र! हे तात! तुम मेरे काम के लिए लंका जाओ॥3॥

बहुत बुझाइ तुम्हहि का कहऊँ। परम चतुर मैं जानत अहऊँ॥
काजु हमार तासु हित होई। रिपु सन करेहु बतकही सोई॥4॥
तुमको बहुत समझाकर क्या कहूँ! मैं जानता हूँ, तुम परम चतुर हो। शत्रु से वही बातचीत करना, जिससे हमारा काम हो और उसका कल्याण हो॥4॥

सोरठा :

प्रभु अग्या धरि सीस चरन बंदि अंगद उठेउ।
सोइ गुन सागर ईस राम कृपा जा कर करहु॥17 क॥
प्रभु की आज्ञा सिर चढ़कर और उनके चरणों की वंदना करके अंगदजी उठे (और बोले-) हे भगवान् श्री रामजी! आप जिस पर कृपा करें, वही गुणों का समुद्र हो जाता है॥17 (क)॥

स्वयंसिद्ध सब काज नाथ मोहि आदरु दियउ।
अस बिचारि जुबराज तन पुलकित हरषित हियउ॥17 ख॥
स्वामी सब कार्य अपने-आप सिद्ध हैं, यह तो प्रभु ने मुझ को आदर दिया है (जो मुझे अपने कार्य पर भेज रहे हैं)। ऐसा विचार कर युवराज अंगद का हृदय हर्षित और शरीर पुलकित हो गया॥17 (ख)॥

चौपाई :

बंदि चरन उर धरि प्रभुताई। अंगद चलेउ सबहि सिरु नाई॥
प्रभु प्रताप उर सहज असंका। रन बाँकुरा बालिसुत बंका॥1॥
चरणों की वंदना करके और भगवान् की प्रभुता हृदय में धरकर अंगद सबको सिर नवाकर चले। प्रभु के प्रताप को हृदय में धारण किए हुए रणबाँकुरे वीर बालिपुत्र स्वाभाविक ही निर्भय हैं॥1॥

पुर पैठत रावन कर बेटा। खेलत रहा सो होइ गै भेंटा॥
बातहिं बात करष बढ़ि आई। जुगल अतुल बल पुनि तरुनाई॥2॥
लंका में प्रवेश करते ही रावण के पुत्र से भेंट हो गई, जो वहाँ खेल रहा था। बातों ही बातों में दोनों में झगड़ा बढ़ गया (क्योंकि) दोनों ही अतुलनीय बलवान् थे और फिर दोनों की युवावस्था थी॥2॥

तेहिं अंगद कहुँ लात उठाई। गहि पद पटकेउ भूमि भवाँई॥
निसिचर निकर देखि भट भारी। जहँ तहँ चले न सकहिं पुकारी॥3॥
उसने अंगद पर लात उठाई। अंगद ने (वही) पैर पकड़कर उसे घुमाकर जमीन पर दे पटका (मार गिराया)। राक्षस के समूह भारी योद्धा देखकर जहाँ-तहाँ (भाग) चले, वे डर के मारे पुकार भी न मचा सके॥3॥

एक एक सन मरमु न कहहीं। समुझि तासु बध चुप करि रहहीं॥
भयउ कोलाहल नगर मझारी। आवा कपि लंका जेहिं जारी॥4॥
एक-दूसरे को मर्म (असली बात) नहीं बतलाते, उस (रावण के पुत्र) का वध समझकर सब चुप मारकर रह जाते हैं। (रावण पुत्र की मृत्यु जानकर और राक्षसों को भय के मारे भागते देखकर) नगरभर में कोलाहल मच गया कि जिसने लंका जलाई थी, वही वानर फिर आ गया है॥4॥

अब धौं कहा करिहि करतारा। अति सभीत सब करहिं बिचारा॥
बिनु पूछें मगु देहिं दिखाई। जेहि बिलोक सोइ जाइ सुखाई॥5॥
सब अत्यंत भयभीत होकर विचार करने लगे कि विधाता अब न जाने क्या करेगा। वे बिना पूछे ही अंगद को (रावण के दरबार की) राह बता देते हैं। जिसे ही वे देखते हैं, वही डर के मारे सूख जाता है॥5॥

दोहा :

गयउ सभा दरबार तब सुमिरि राम पद कंज।
सिंह ठवनि इत उत चितव धीर बीर बल पुंज॥18॥
श्री रामजी के चरणकमलों का स्मरण करके अंगद रावण की सभा के द्वार पर गए और वे धीर, वीर और बल की राशि अंगद सिंह की सी ऐंड़ (शान) से इधर-उधर देखने लगे॥18॥

चौपाई :

तुरत निसाचर एक पठावा। समाचार रावनहि जनावा॥
सुनत बिहँसि बोला दससीसा। आनहु बोलि कहाँ कर कीसा॥1॥
तुरंत ही उन्होंने एक राक्षस को भेजा और रावण को अपने आने का समाचार सूचित किया। सुनते ही रावण हँसकर बोला- बुला लाओ, (देखें) कहाँ का बंदर है॥1॥

आयसु पाइ दूत बहु धाए। कपिकुंजरहि बोलि लै आए॥
अंगद दीख दसानन बैसें। सहित प्रान कज्जलगिरि जैसें॥2॥
आज्ञा पाकर बहुत से दूत दौड़े और वानरों में हाथी के समान अंगद को बुला लाए। अंगद ने रावण को ऐसे बैठे हुए देखा, जैसे कोई प्राणयुक्त (सजीव) काजल का पहाड़ हो!॥2॥

भुजा बिटप सिर सृंग समाना। रोमावली लता जनु नाना॥
मुख नासिका नयन अरु काना। गिरि कंदरा खोह अनुमाना॥3॥
भुजाएँ वृक्षों के और सिर पर्वतों के शिखरों के समान हैं। रोमावली मानो बहुत सी लताएँ हैं। मुँह, नाक, नेत्र और कान पर्वत की कन्दराओं और खोहों के बराबर हैं॥3॥

गयउ सभाँ मन नेकु न मुरा। बालितनय अतिबल बाँकुरा॥
उठे सभासद कपि कहुँ देखी। रावन उर भा क्रोध बिसेषी॥4॥
अत्यंत बलवान् बाँके वीर बालिपुत्र अंगद सभा में गए, वे मन में जरा भी नहीं झिझके। अंगद को देखते ही सब सभासद् उठ खड़े हुए। यह देखकर रावण के हृदय में बड़ा क्रोध हुआ॥4॥

दोहा :

जथा मत्त गज जूथ महुँ पंचानन चलि जाइ।
राम प्रताप सुमिरि मन बैठ सभाँ सिरु नाइ॥19॥
जैसे मतवाले हाथियों के झुंड में सिंह (निःशंक होकर) चला जाता है, वैसे ही श्री रामजी के प्रताप का हृदय में स्मरण करके वे (निर्भय) सभा में सिर नवाकर बैठ गए॥19॥

चौपाई :

कह दसकंठ कवन तैं बंदर। मैं रघुबीर दूत दसकंधर॥
मम जनकहि तोहि रही मिताई। तव हित कारन आयउँ भाई॥1॥
रावण ने कहा- अरे बंदर! तू कौन है? (अंगद ने कहा-) हे दशग्रीव! मैं श्री रघुवीर का दूत हूँ। मेरे पिता से और तुमसे मित्रता थी, इसलिए हे भाई! मैं तुम्हारी भलाई के लिए ही आया हूँ॥1॥

उत्तम कुल पुलस्ति कर नाती। सिव बिंरचि पूजेहु बहु भाँती॥
बर पायहु कीन्हेहु सब काजा। जीतेहु लोकपाल सब राजा॥2॥
तुम्हारा उत्तम कुल है, पुलस्त्य ऋषि के तुम पौत्र हो। शिवजी की और ब्रह्माजी की तुमने बहुत प्रकार से पूजा की है। उनसे वर पाए हैं और सब काम सिद्ध किए हैं। लोकपालों और सब राजाओं को तुमने जीत लिया है॥2॥

नृप अभिमान मोह बस किंबा। हरि आनिहु सीता जगदंबा॥
अब सुभ कहा सुनहु तुम्ह मोरा। सब अपराध छमिहि प्रभु तोरा॥3॥
राजमद से या मोहवश तुम जगज्जननी सीताजी को हर लाए हो। अब तुम मेरे शुभ वचन (मेरी हितभरी सलाह) सुनो! (उसके अनुसार चलने से) प्रभु श्री रामजी तुम्हारे सब अपराध क्षमा कर देंगे॥3॥

दसन गहहु तृन कंठ कुठारी। परिजन सहित संग निज नारी॥

सादर जनकसुता करि आगें। एहि बिधि चलहु सकल भय त्यागें॥4॥

दाँतों में तिनका दबाओ, गले में कुल्हाड़ी डालो और कुटुम्बियों सहित अपनी स्त्रियों को साथ लेकर, आदरपूर्वक जानकीजी को आगे करके, इस प्रकार सब भय छोड़कर चलो-॥4॥

दोहा :

प्रनतपाल रघुबंसमनि त्राहि त्राहि अब मोहि।
आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करेंगे तोहि॥20॥

और 'हे शरणागत के पालन करने वाले रघुवंश शिरोमणि श्री रामजी! मेरी रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए।' (इस प्रकार आर्त प्रार्थना करो।) आर्त पुकार सुनते ही प्रभु तुमको निर्भय कर देंगे॥20॥

चौपाई :

रे कपिपोत बोलु संभारी। मूढ न जानेहि मोहि सुरारी॥
कहु निज नाम जनक कर भाई। केहि नातें मानिऐ मिताई॥1॥

(रावण ने कहा-) अरे बंदर के बच्चे! सँभालकर बोल! मूर्ख! मुझ देवताओं के शत्रु को तूने जाना नहीं? अरे भाई! अपना और अपने बाप का नाम तो बता। किस नाते से मित्रता मानता है?॥1॥

अंगद नाम बालि कर बेटा। तासों कबहुँ भई ही भेंटा॥
अंगद बचन सुनत सकुचाना। रहा बालि बानर मैं जाना॥2॥

(अंगद ने कहा-) मेरा नाम अंगद है, मैं बालि का पुत्र हूँ। उनसे कभी तुम्हारी भेंट हुई थी? अंगद का वचन सुनते ही रावण कुछ सकुचा गया (और बोला-) हाँ, मैं जान गया (मुझे याद आ गया), बालि नाम का एक बंदर था॥2॥

अंगद तहीं बालि कर बालक। उपजेहु बंस अनल कुल घालक॥
गर्भ न गयहु ब्यर्थ तुम्ह जायहु। निज मुख तापस दूत कहायहु॥3॥

अरे अंगद! तू ही बालि का लड़का है? अरे कुलनाशक! तू तो अपने कुलरूपी बाँस के लिए अग्नि रूप ही पैदा हुआ! गर्भ में ही क्यों न नष्ट हो गया तू? व्यर्थ ही पैदा हुआ जो अपने ही मुँह से तपस्वियों का दूत कहलाया!॥3॥

अब कहु कुसल बालि कहँ अहई। बिहँसि बचन तब अंगद कहई॥
दिन दस गएँ बालि पहिं जाई। बूझेहु कुसल सखा उर लाई॥4॥

अब बालि की कुशल तो बता, वह (आजकल) कहाँ है? तब अंगद ने हँसकर कहा- दस (कुछ) दिन बीतने पर (स्वयं ही) बालि के पास जाकर, अपने मित्र को हृदय से लगाकर, उसी से कुशल पूछ लेना॥4॥

राम बिरोध कुसल जसि होई। सो सब तोहि सुनाइहि सोई॥

सुनु सठ भेद होइ मन ताकें। श्री रघुबीर हृदय नहिं जाकें॥5॥

श्री रामजी से विरोध करने पर जैसी कुशल होती है, वह सब तुमको वे सुनावेंगे। हे मूर्ख! सुन, भेद उसी के मन में पड़ सकता है, (भेद नीति उसी पर अपना प्रभाव डाल सकती है) जिसके हृदय में श्री रघुवीर न हों॥5॥

दोहा :

हम कुल घालक सत्य तुम्ह कुल पालक दससीस।
अंधउ बधिर न अस कहहिं नयन कान तव बीस॥21॥

सच है, मैं तो कुल का नाश करने वाला हूँ और हे रावण! तुम कुल के रक्षक हो। अंधे-बहरे भी ऐसी बात नहीं कहते, तुम्हारे तो बीस नेत्र और बीस कान हैं!॥21॥

चौपाई :

सिव बिरंचि सुर मुनि समुदाई। चाहत जासु चरन सेवकाई॥
तासु दूत होइ हम कुल बोरा। अइसिहुँ मति उर बिहर न तोरा॥1॥

शिव, ब्रह्मा (आदि) देवता और मुनियों के समुदाय जिनके चरणों की सेवा (करना) चाहते हैं, उनका दूत होकर मैंने कुल को डुबा दिया? अरे ऐसी बुद्धि होने पर भी तुम्हारा हृदय फट नहीं जाता?॥1॥

सुनि कठोर बानी कपि केरी। कहत दसानन नयन तरेरी॥
खल तव कठिन बचन सब सहऊँ। नीति धर्म मैं जानत अहऊँ॥2॥

वानर (अंगद) की कठोर वाणी सुनकर रावण आँखें तरेरकर (तिरछी करके) बोला- अरे दुष्ट! मैं तेरे सब कठोर वचन इसीलिए सह रहा हूँ कि मैं नीति और धर्म को जानता हूँ (उन्हीं की रक्षा कर रहा हूँ)॥2॥

कह कपि धर्मसीलता तोरी। हमहुँ सुनी कृत पर त्रिय चोरी॥
देखी नयन दूत रखवारी। बूड़ि न मरहु धर्म ब्रतधारी॥3॥

अंगद ने कहा- तुम्हारी धर्मशीलता मैंने भी सुनी है। (वह यह कि) तुमने पराई स्त्री की चोरी की है! और दूत की रक्षा की बात तो अपनी आँखों से देख ली। ऐसे धर्म के व्रत को धारण (पालन) करने वाले तुम डूबकर मर नहीं जाते!॥3॥

कान नाक बिनु भगिनि निहारी। छमा कीन्हि तुम्ह धर्म बिचारी॥
धर्मसीलता तव जग जागी। पावा दरसु हमहुँ बड़भागी॥4॥

नाक-कान से रहित बहिन को देखकर तुमने धर्म विचारकर ही तो क्षमा कर दिया था! तुम्हारी धर्मशीलता जगजाहिर है। मैं भी बड़ा भाग्यवान् हूँ, जो मैंने तुम्हारा दर्शन पाया?॥4॥

दोहा :

जनि जल्पसि जड़ जंतु कपि सठ बिलोकु मम बाहु।
लोकपाल बल बिपुल ससि ग्रसन हेतु सब राहु॥22 क॥

(रावण ने कहा-) अरे जड़ जन्तु वानर! व्यर्थ बक-बक न कर, अरे मूर्ख! मेरी भुजाएँ तो देख। ये सब लोकपालों के विशाल बल रूपी चंद्रमा को ग्रसने के लिए राहु हैं॥22 (क)॥

पुनि नभ सर मम कर निकर कमलन्हि पर करि बास।
सोभत भयउ मराल इव संभु सहित कैलास॥22 ख॥

फिर (तूने सुना ही होगा कि) आकाश रूपी तालाब में मेरी भुजाओं रूपी कमलों पर बसकर शिवजी सहित कैलास हंस के समान शोभा को प्राप्त हुआ था!॥22 (ख)॥

चौपाई :

तुम्हरे कटक माझ सुनु अंगद। मो सन भिरिहि कवन जोधा बद॥
तब प्रभु नारि बिरहँ बलहीना। अनुज तासु दुख दुखी मलीना॥1॥

अरे अंगद! सुन, तेरी सेना में बता, ऐसा कौन योद्धा है, जो मुझसे भिड़ सकेगा। तेरा मालिक तो स्त्री के वियोग में बलहीन हो रहा है और उसका छोटा भाई उसी के दुःख से दुःखी और उदास है॥1॥

तुम्ह सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ। अनुज हमार भीरु अति सोऊ॥
जामवंत मंत्री अति बूढ़ा। सो कि होइ अब समरारूढ़ा॥2॥

तुम और सुग्रीव, दोनों (नदी) तट के वृक्ष हो (रहा) मेरा छोटा भाई विभीषण, (सो) वह भी बड़ा डरपोक है। मंत्री जाम्बवान् बहुत बूढ़ा है। वह अब लड़ाई में क्या चढ़ (उद्यत हो) सकता है?॥2॥

सिल्पि कर्म जानहिं नल नीला। है कपि एक महा बलसीला॥
आवा प्रथम नगरु जेहिं जारा। सुनत बचन कह बालिकुमारा॥3॥

नल-नील तो शिल्प-कर्म जानते हैं (वे लड़ना क्या जानें?)। हाँ, एक वानर जरूर महान् बलवान् है, जो पहले आया था और जिसने लंका जलाई थी। यह वचन सुनते ही बालि पुत्र अंगद ने कहा-॥3॥

सत्य बचन कहु निसिचर नाहा। साँचेहुँ कीस कीन्ह पुर दाहा॥
रावण नगर अल्प कपि दहई। सुनि अस बचन सत्य को कहई॥4॥

हे राक्षसराज! सच्ची बात कहो! क्या उस वानर ने सचमुच तुम्हारा नगर जला दिया? रावण (जैसे जगद्विजयी योद्धा) का नगर एक छोटे से वानर ने जला दिया। ऐसे वचन सुनकर उन्हें सत्य कौन कहेगा?॥4॥

जो अति सुभट सराहेहु रावन। सो सुग्रीव केर लघु धावन॥
चलइ बहुत सो बीर न होई। पठवा खबरि लेन हम सोई॥5॥

हे रावण! जिसको तुमने बहुत बड़ा योद्धा कहकर सराहा है, वह तो सुग्रीव का एक छोटा सा दौड़कर चलने वाला हरकारा है। वह बहुत चलता है, वीर नहीं है। उसको तो हमने (केवल) खबर लेने के लिए भेजा था॥5॥

दोहा :

सत्य नगरु कपि जारेउ बिनु प्रभु आयसु पाइ।
फिरि न गयउ सुग्रीव पहिं तेहिं भय रहा लुकाइ॥23 क॥

क्या सचमुच ही उस वानर ने प्रभु की आज्ञा पाए बिना ही तुम्हारा नगर जला डाला? मालूम होता है, इसी डर से वह लौटकर सुग्रीव के पास नहीं गया और कहीं छिप रहा!॥23 (क)॥

सत्य कहहि दसकंठ सब मोहि न सुनि कछु कोह।
कोउ न हमारें कटक अस तो सन लरत जो सोह॥23 ख॥

हे रावण! तुम सब सत्य ही कहते हो, मुझे सुनकर कुछ भी क्रोध नहीं है। सचमुच हमारी सेना में कोई भी ऐसा नहीं है, जो तुमसे लड़ने में शोभा पाए॥23 (ख)॥

प्रीति बिरोध समान सन करिअ नीति असि आहि।
जौं मृगपति बध मेडुकन्हि भल कि कहइ कोउ ताहि॥23 ग॥

प्रीति और वैर बराबरी वाले से ही करना चाहिए, नीति ऐसी ही है। सिंह यदि मेंढकों को मारे, तो क्या उसे कोई भला कहेगा?॥23 (ग)॥

जद्यपि लघुता राम कहुँ तोहि बधें बड़ दोष।
तदपि कठिन दसकंठ सुनु छत्र जाति कर रोष॥23 घ॥

यद्यपि तुम्हें मारने में श्री रामजी की लघुता है और बड़ा दोष भी है तथापि हे रावण! सुनो, क्षत्रिय जाति का क्रोध बड़ा कठिन होता है॥23 (घ)॥

बक्र उक्ति धनु बचन सर हृदय दहेउ रिपु कीस।
प्रतिउत्तर सड़सिन्ह मनहुँ काढ़त भट दससीस॥23 ङ॥

वक्रोक्ति रूपी धनुष से वचन रूपी बाण मारकर अंगद ने शत्रु का हृदय जला दिया। वीर रावण उन बाणों को मानो प्रत्युत्तर रूपी सँड़सियों से निकाल रहा है॥ 23 (ङ)॥

हँसि बोलेउ दसमौलि तब कपि कर बड़ गुन एक।
जो प्रतिपालइ तासु हित करइ उपाय अनेक॥23 च॥

तब रावण हँसकर बोला- बंदर में यह एक बड़ा गुण है कि जो उसे पालता है, उसका वह अनेकों

उपायों से भला करने की चेष्टा करता है॥23 (च)॥

चौपाई :

धन्य कीस जो निज प्रभु काजा। जहँ तहँ नाचइ परिहरि लाजा॥
नाचि कूदि करि लोग रिझाई। पति हित करइ धर्म निपुनाई॥1॥

बंदर को धन्य है, जो अपने मालिक के लिए लाज छोड़कर जहाँ-तहाँ नाचता है। नाच-कूदकर, लोगों को रिझाकर, मालिक का हित करता है। यह उसके धर्म की निपुणता है॥1॥

अंगद स्वामिभक्त तव जाती। प्रभु गुन कस न कहसि एहि भाँती॥
मैं गुन गाहक परम सुजाना। तव कटु रटनि करउँ नहिं काना॥2॥

हे अंगद! तेरी जाति स्वामिभक्त है (फिर भला) तू अपने मालिक के गुण इस प्रकार कैसे न बखानेगा? मैं गुण ग्राहक (गुणों का आदर करने वाला) और परम सुजान (समझदार) हूँ, इसी से तेरी जली-कटी बक-बक पर कान (ध्यान) नहीं देता॥2॥

कह कपि तव गुन गाहकताई। सत्य पवनसुत मोहि सुनाई॥
बन बिधंसि सुत बधि पुर जारा। तदपि न तेहिं कछु कृत अपकारा॥3॥

अंगद ने कहा- तुम्हारी सच्ची गुण ग्राहकता तो मुझे हनुमान् ने सुनाई थी। उसने अशोक वन में विध्वंस (तहस-नहस) करके, तुम्हारे पुत्र को मारकर नगर को जला दिया था। तो भी (तुमने अपनी गुण ग्राहकता के कारण यही समझा कि) उसने तुम्हारा कुछ भी अपकार नहीं किया॥3॥

सोइ बिचारि तव प्रकृति सुहाई। दसकंधर मैं कीन्हि ढिठाई॥
देखेउँ आइ जो कछु कपि भाषा। तुम्हरें लाज न रोष न माखा॥4॥

तुम्हारा वही सुंदर स्वभाव विचार कर, हे दशग्रीव! मैंने कुछ धृष्टता की है। हनुमान् ने जो कुछ कहा था, उसे आकर मैंने प्रत्यक्ष देख लिया कि तुम्हें न लज्जा है, न क्रोध है और न चिढ़ है॥4॥

जौं असि मति पितु खाए कीसा। कहि अस बचन हँसा दससीसा॥
पितहि खाइ खातेउँ पुनि तोही। अबहीं समुझि परा कछु मोही॥5॥

(रावण बोला-) अरे वानर! जब तेरी ऐसी बुद्धि है, तभी तो तू बाप को खा गया। ऐसा वचन कहकर रावण हँसा। अंगद ने कहा- पिता को खाकर फिर तुमको भी खा डालता, परन्तु अभी तुरंत कुछ और ही बात मेरी समझ में आ गई!॥5॥

बालि बिमल जस भाजन जानी। हतउँ न तोहि अधम अभिमानी॥
कहु रावन रावन जग केते। मैं निज श्रवन सुने सुनु जेते॥6॥

अरे नीच अभिमानी! बालि के निर्मल यश का पात्र (कारण) जानकर तुम्हें मैं नहीं मारता।

रावण! यह तो बता कि जगत् में कितने रावण हैं? मैंने जितने रावण अपने कानों से सुन रखे हैं, उन्हें सुन-॥6॥

बलिहि जितन एक गयउ पताला। राखेउ बाँधि सिसुन्ह हयसाला॥
खेलहिं बालक मारहिं जाई। दया लागि बलि दीन्ह छोड़ाई॥7॥

एक रावण तो बलि को जीतने पाताल में गया था, तब बच्चों ने उसे घुड़साल में बाँध रखा। बालक खेलते थे और जा-जाकर उसे मारते थे। बलि को दया लगी, तब उन्होंने उसे छुड़ा दिया॥7॥

एक बहोरि सहसभुज देखा। धाइ धरा जिमि जंतु बिसेषा॥
कौतुक लागि भवन लै आवा। सो पुलस्ति मुनि जाइ छोड़ावा॥8॥

फिर एक रावण को सहस्रबाहु ने देखा, और उसने दौड़कर उसको एक विशेष प्रकार के (विचित्र) जन्तु की तरह (समझकर) पकड़ लिया। तमाशे के लिए वह उसे घर ले आया। तब पुलस्त्य मुनि ने जाकर उसे छुड़ाया॥8॥

दोहा :

एक कहत मोहि सकुच अति रहा बालि कीं काँख।
इन्ह महुँ रावन तैं कवन सत्य बदहि तजि माख॥24॥

एक रावण की बात कहने में तो मुझे बड़ा संकोच हो रहा है- वह (बहुत दिनों तक) बालि की काँख में रहा था। इनमें से तुम कौन से रावण हो? खीझना छोड़कर सच-सच बताओ॥24॥

चौपाई : :

सुनु सठ सोइ रावन बलसीला। हरगिरि जान जासु भुज लीला॥
जान उमापति जासु सुराई। पूजेउँ जेहि सिर सुमन चढ़ाई॥1॥

(रावण ने कहा-) अरे मूर्ख! सुन, मैं वही बलवान् रावण हूँ, जिसकी भुजाओं की लीला (करामात) कैलास पर्वत जानता है। जिसकी शूरता उमापति महादेवजी जानते हैं, जिन्हें अपने सिर रूपी पुष्प चढ़ा-चढ़ाकर मैंने पूजा था॥1॥

सिर सरोज निज करन्हि उतारी। पूजेउँ अमित बार त्रिपुरारी॥
भुज बिक्रम जानहिं दिगपाला। सठ अजहूँ जिन्ह कें उर साला॥2॥

सिर रूपी कमलों को अपने हाथों से उतार-उतारकर मैंने अगणित बार त्रिपुरारि शिवजी की पूजा की है। अरे मूर्ख! मेरी भुजाओं का पराक्रम दिक्पाल जानते हैं, जिनके हृदय में वह आज भी चुभ रहा है॥2॥

जानहिं दिग्गज उर कठिनाई। जब जब भिरउँ जाइ बरिआई॥

जिन्ह के दसन कराल न फूटे। उर लागत मूलक इव टूटे॥3॥

दिग्गज (दिशाओं के हाथी) मेरी छाती की कठोरता को जानते हैं। जिनके भयानक दाँत, जब-जब जाकर मैं उनसे जबरदस्ती भिड़ा, मेरी छाती में कभी नहीं फूटे (अपना चिह्न भी नहीं बना सके), बल्कि मेरी छाती से लगते ही वे मूली की तरह टूट गए॥3॥

जासु चलत डोलति इमि धरनी। चढ़त मत्त गज जिमि लघु तरनी॥
सोइ रावन जग बिदित प्रतापी। सुनेहि न श्रवन अलीक प्रलापी॥4॥

जिसके चलते समय पृथ्वी इस प्रकार हिलती है जैसे मतवाले हाथी के चढ़ते समय छोटी नाव! मैं वही जगत प्रसिद्ध प्रतापी रावण हूँ। अरे झूठी बकवास करने वाले! क्या तूने मुझको कानों से कभी सुना?॥4॥

दोहा :

तेहि रावन कहँ लघु कहसि नर कर करसि बखान।
रे कपि बर्बर खर्ब खल अब जाना तव ग्यान॥25॥

उस (महान प्रतापी और जगत प्रसिद्ध) रावण को (मुझे) तू छोटा कहता है और मनुष्य की बड़ाई करता है? अरे दुष्ट, असभ्य, तुच्छ बंदर! अब मैंने तेरा ज्ञान जान लिया॥25॥

चौपाई :

सुनि अंगद सकोप कह बानी। बोलु संभारि अधम अभिमानी॥
सहसबाहु भुज गहन अपारा। दहन अनल सम जासु कुठारा॥1॥

रावण के ये वचन सुनकर अंगद क्रोध सहित वचन बोले- अरे नीच अभिमानी! सँभलकर (सोच-समझकर) बोल। जिनका फरसा सहस्रबाहु की भुजाओं रूपी अपार वन को जलाने के लिए अग्नि के समान था,॥1॥

जासु परसु सागर खर धारा। बूड़े नृप अगनित बहु बारा॥
तासु गर्ब जेहि देखत भागा। सो नर क्यों दससीस अभागा॥2॥

जिनके फरसा रूपी समुद्र की तीव्र धारा में अनगिनत राजा अनेकों बार डूब गए, उन परशुरामजी का गर्व जिन्हें देखते ही भाग गया, अरे अभागे दशशीश! वे मनुष्य क्यों कर हैं?॥2॥

राम मनुज कस रे सठ बंगा। धन्वी कामु नदी पुनि गंगा॥
पसु सुरधेनु कल्पतरु रूखा। अन्न दान अरु रस पीयूषा॥3॥

क्यों रे मूर्ख उद्दण्ड! श्री रामचंद्रजी मनुष्य हैं? कामदेव भी क्या धनुर्धारी है? और गंगाजी क्या नदी हैं? कामधेनु क्या पशु है? और कल्पवृक्ष क्या पेड़ है? अन्न भी क्या दान है? और अमृत क्या रस है?॥3॥

बैनतेय खग अहि सहसानन। चिंतामनि पुनि उपल दसानन॥
सुनु मतिमंद लोक बैकुंठा। लाभ कि रघुपति भगति अकुंठा॥4॥

गरुड़जी क्या पक्षी हैं? शेषजी क्या सर्प हैं? अरे रावण! चिंतामणि भी क्या पत्थर है? अरे ओ मूर्ख! सुन, वैकुण्ठ भी क्या लोक है? और श्री रघुनाथजी की अखण्ड भक्ति क्या (और लाभों जैसा ही) लाभ है?॥4॥

दोहा :

सेन सहित तव मान मथि बन उजारि पुर जारि।
कस रे सठ हनुमान कपि गयउ जो तव सुत मारि॥26॥

सेना समेत तेरा मान मथकर, अशोक वन को उजाड़कर, नगर को जलाकर और तेरे पुत्र को मारकर जो लौट गए (तू उनका कुछ भी न बिगाड़ सका), क्यों रे दुष्ट! वे हनुमान्‌जी क्या वानर हैं?॥26॥

चौपाई :

सुनु रावन परिहरि चतुराई। भजसि न कृपासिंधु रघुराई॥
जौं खल भएसि राम कर द्रोही। ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही॥1॥

अरे रावण! चतुराई (कपट) छोड़कर सुन। कृपा के समुद्र श्री रघुनाथजी का तू भजन क्यों नहीं करता? अरे दुष्ट! यदि तू श्री रामजी का वैरी हुआ तो तुझे ब्रह्मा और रुद्र भी नहीं बचा सकेंगे।

मूढ़ बृथा जनि मारसि गाला। राम बयर अस होइहि हाला॥
तव सिर निकर कपिन्ह के आगें। परिहहिं धरनि राम सर लागें॥2॥

हे मूढ! व्यर्थ गाल न मार (डींग न हाँक)। श्री रामजी से वैर करने पर तेरा ऐसा हाल होगा कि तेरे सिर समूह श्री रामजी के बाण लगते ही वानरों के आगे पृथ्वी पर पड़ेंगे,॥2॥

ते तव सिर कंदुक सम नाना। खेलिहहिं भालु कीस चौगाना॥
जबहिं समर कोपिहि रघुनायक। छुटिहहिं अति कराल बहु सायक॥3॥

और रीछ-वानर तेरे उन गेंद के समान अनेकों सिरों से चौगान खेलेंगे। जब श्री रघुनाथजी युद्ध में कोप करेंगे और उनके अत्यंत तीक्ष्ण बहुत से बाण छूटेंगे,॥3॥

तब कि चलिहि अस गाल तुम्हारा। अस बिचारि भजु राम उदारा॥
सुनत बचन रावन परजरा। जरत महानल जनु घृत परा॥4॥

तब क्या तेरा गाल चलेगा? ऐसा विचार कर उदार (कृपालु) श्री रामजी को भज। अंगद के ये वचन सुनकर रावण बहुत अधिक जल उठा। मानो जलती हुई प्रचण्ड अग्नि में घी पड़ गया हो॥4॥

दोहा :

कुंभकरन अस बंधु मम सुत प्रसिद्ध सक्रारि।
मोर पराक्रम नहिं सुनेहि जितेऊँ चराचर झारि॥27॥

(वह बोला- अरे मूर्ख!) कुंभकर्ण- ऐसा मेरा भाई है, इन्द्र का शत्रु सुप्रसिद्ध मेघनाद मेरा पुत्र है! और मेरा पराक्रम तो तूने सुना ही नहीं कि मैंने संपूर्ण जड़-चेतन जगत् को जीत लिया है!॥27॥

चौपाई :

सठ साखामृग जोरि सहाई। बाँधा सिंधु इहइ प्रभुताई॥
नाघहिं खग अनेक बारीसा। सूर न होहिं ते सुनु सब कीसा॥1॥

रे दुष्ट! वानरों की सहायता जोड़कर राम ने समुद्र बाँध लिया, बस, यही उसकी प्रभुता है। समुद्र को तो अनेकों पक्षी भी लाँघ जाते हैं। पर इसी से वे सभी शूरवीर नहीं हो जाते। अरे मूर्ख बंदर! सुन-॥1॥

मम भुज सागर बल जल पूरा। जहँ बूड़े बहु सुर नर सूरा॥
बीस पयोधि अगाध अपारा। को अस बीर जो पाइहि पारा॥2॥

मेरा एक-एक भुजा रूपी समुद्र बल रूपी जल से पूर्ण है, जिसमें बहुत से शूरवीर देवता और मनुष्य डूब चूके हैं। (बता,) कौन ऐसा शूरवीर है, जो मेरे इन अथाह और अपार बीस समुद्रों का पार पा जाएगा?॥2॥

दिगपालन्ह मैं नीर भरावा। भूप सुजस खल मोहि सुनावा॥
जौं पै समर सुभट तव नाथा। पुनि पुनि कहसि जासु गुन गाथा॥3॥

अरे दुष्ट! मैंने दिक्पालों तक से जल भरवाया और तू एक राजा का मुझे सुयश सुनाता है! यदि तेरा मालिक, जिसकी गुणगाथा तू बार-बार कह रहा है, संग्राम में लड़ने वाला योद्धा है-॥3॥

तौ बसीठ पठवत केहि काजा। रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा॥
हरगिरि मथन निरखु मम बाहू। पुनि सठ कपि निज प्रभुहि सराहू॥4॥

तो (फिर) वह दूत किसलिए भेजता है? शत्रु से प्रीति (सन्धि) करते उसे लाज नहीं आती? (पहले) कैलास का मथन करने वाली मेरी भुजाओं को देख। फिर अरे मूर्ख वानर! अपने मालिक की सराहना करना॥4॥

दोहा :

सूर कवन रावन सरिस स्वकर काटि जेहिं सीस।
हुने अनल अति हरष बहु बार साखि गौरीस॥28॥

रावण के समान शूरवीर कौन है? जिसने अपने हाथों से सिर काट-काटकर अत्यंत हर्ष के साथ बहुत बार उन्हें अग्नि में होम दिया! स्वयं गौरीपति शिवजी इस बात के साक्षी हैं॥28॥

चौपाई :

जरत बिलोकेउँ जबहि कपाला। बिधि के लिखे अंक निज भाला॥
नर कें कर आपन बध बाँची। हसेउँ जानि बिधि गिरा असाँची॥1॥

मस्तकों के जलते समय जब मैंने अपने ललाटों पर लिखे हुए विधाता के अक्षर देखे, तब मनुष्य के हाथ से अपनी मृत्यु होना बाँचकर, विधाता की वाणी (लेख को) असत्य जानकर मैं हँसा॥1॥

सोउ मन समुझि त्रास नहिं मोरें। लिखा बिरंचि जरठ मति भोरें॥
आन बीर बल सठ मम आगें। पुनि पुनि कहसि लाज पति त्यागें॥2॥

उस बात को समझकर (स्मरण करके) भी मेरे मन में डर नहीं है। (क्योंकि मैं समझता हूँ कि) बूढ़े ब्रह्मा ने बुद्धि भ्रम से ऐसा लिख दिया है। अरे मूर्ख! तू लज्जा और मर्यादा छोड़कर मेरे आगे बार-बार दूसरे वीर का बल कहता है!॥2॥

कह अंगद सलज्ज जग माहीं। रावन तोहि समान कोउ नाहीं॥
लाजवंत तव सहज सुभाऊ। निज मुख निज गुन कहसि न काऊ॥3॥

अंगद ने कहा- अरे रावण! तेरे समान लज्जावान् जगत् में कोई नहीं है। लज्जाशीलता तो तेरा सहज स्वभाव ही है। तू अपने मुँह से अपने गुण कभी नहीं कहता॥3॥

सिर अरु सैल कथा चित रही। ताते बार बीस तैं कहीं॥
सो भुजबल राखेहु उर घाली। जीतेहु सहसबाहु बलि बाली॥4॥

सिर काटने और कैलास उठाने की कथा चित्त में चढ़ी हुई थी, इससे तूने उसे बीसों बार कहा। भुजाओं के उस बल को तूने हृदय में ही टाल (छिपा) रखा है, जिससे तूने सहस्रबाहु, बलि और बालि को जीता था॥4॥

सुनु मतिमंद देहि अब पूरा। काटें सीस कि होइअ सूरा॥
इंद्रजालि कहुँ कहिअ न बीरा। काटइ निज कर सकल सरीरा॥5॥

अरे मंद बुद्धि! सुन, अब बस कर। सिर काटने से भी क्या कोई शूरवीर हो जाता है? इंद्रजाल रचने वाले को वीर नहीं कहा जाता, यद्यपि वह अपने ही हाथों अपना सारा शरीर काट डालता है!॥5॥

दोहा :

जरहिं पतंग मोह बस भार बहहिं खर बृंद।

ते नहिं सूर कहावहिं समुझि देखु मतिमंद॥29॥

अरे मंद बुद्धि! समझकर देख। पतंगे मोहवश आग में जल मरते हैं, गदहों के झुंड बोझ लादकर चलते हैं, पर इस कारण वे शूरवीर नहीं कहलाते॥29॥

चौपाई :

अब जनि बतबढ़ाव खल करही। सुनु मम बचन मान परिहरही॥
दसमुख मैं न बसीठीं आयउँ। अस बिचारि रघुबीर पठायउँ॥1॥

अरे दुष्ट! अब बतबढ़ाव मत कर, मेरा वचन सुन और अभिमान त्याग दे! हे दशमुख! मैं दूत की तरह (सन्धि करने) नहीं आया हूँ। श्री रघुवीर ने ऐसा विचार कर मुझे भेजा है-॥1॥

बार बार अस कहइ कृपाला। नहिं गजारि जसु बंधे सृकाला॥
मन महुँ समुझि बचन प्रभु केरे। सहेउँ कठोर बचन सठ तेरे॥2॥

कृपालु श्री रामजी बार-बार ऐसा कहते हैं कि स्यार के मारने से सिंह को यश नहीं मिलता। अरे मूर्ख! प्रभु के (उन) वचनों को मन में समझकर (याद करके) ही मैंने तेरे कठोर वचन सहे हैं॥2॥

नाहिं त करि मुख भंजन तोरा। लै जातेउँ सीतहि बरजोरा॥
जानेउँ तव बल अधम सुरारी। सूनें हरि आनिहि परनारी॥3॥

नहीं तो तेरे मुँह तोड़कर मैं सीताजी को जबरदस्ती ले जाता। अरे अधम! देवताओं के शत्रु! तेरा बल तो मैंने तभी जान लिया, जब तू सूने में पराई स्त्री को हर (चुरा) लाया॥3॥

तै निसिचर पति गर्ब बहूता। मैं रघुपति सेवक कर दूता॥
जौं न राम अपमानहिं डरऊँ। तोहि देखत अस कौतुक करउँ॥4॥

तू राक्षसों का राजा और बड़ा अभिमानी है, परन्तु मैं तो श्री रघुनाथजी के सेवक (सुग्रीव) का दूत (सेवक का भी सेवक) हूँ। यदि मैं श्री रामजी के अपमान से न डरूँ तो तेरे देखते-देखते ऐसा तमाशा करूँ कि-॥4॥

दोहा :

तोहि पटकि महि सेन हति चौपट करि तव गाउँ।
तव जुबतिन्ह समेत सठ जनकसुतहि लै जाउँ॥30॥

तुझे जमीन पर पटककर, तेरी सेना का संहार कर और तेरे गाँव को चौपट (नष्ट-भ्रष्ट) करके, अरे मूर्ख! तेरी युवती स्त्रियों सहित जानकीजी को ले जाऊँ॥30॥

चौपाई :

जौं अस करौं तदपि न बड़ाई। मुएहि बधें नहिं कछु मनुसाई॥
कौल कामबस कृपिन बिमूढा। अति दरिद्र अजसी अति बूढा॥1॥

यदि ऐसा करूँ, तो भी इसमें कोई बड़ाई नहीं है। मरे हुए को मारने में कुछ भी पुरुषत्व (बहादुरी) नहीं है। वाममार्गी, कामी, कंजूस, अत्यंत मूढ, अति दरिद्र, बदनाम, बहुत बूढा,॥1॥

सदा रोगबस संतत क्रोधी। बिष्नु बिमुख श्रुति संत बिरोधी॥
तनु पोषक निंदक अघ खानी जीवत सव सम चौदह प्रानी॥2॥

नित्य का रोगी, निरंतर क्रोधयुक्त रहने वाला, भगवान् विष्णु से विमुख, वेद और संतों का विरोधी, अपना ही शरीर पोषण करने वाला, पराई निंदा करने वाला और पाप की खान (महान् पापी)- ये चौदह प्राणी जीते ही मुरदे के समान हैं॥2॥

अस बिचारि खल बधउँ न तोही। अब जनि रिस उपजावसि मोही॥
सुनि सकोप कह निसिचर नाथा। अधर दसन दसि मीजत हाथा॥3॥

अरे दुष्ट! ऐसा विचार कर मैं तुझे नहीं मारता। अब तू मुझमें क्रोध न पैदा कर (मुझे गुस्सा न दिला)। अंगद के वचन सुनकर राक्षस राज रावण दाँतों से होठ काटकर, क्रोधित होकर हाथ मलता हुआ बोला-॥3॥

रे कपि अधम मरन अब चहसी। छोटे बदन बात बड़ि कहसी॥
कटु जल्पसि जड़ कपि बल जाकें। बल प्रताप बुधि तेज न ताकें॥4॥

अरे नीच बंदर! अब तू मरना ही चाहता है! इसी से छोटे मुँह बड़ी बात कहता है। अरे मूर्ख बंदर! तू जिसके बल पर कड़ुए वचन बक रहा है, उसमें बल, प्रताप, बुद्धि अथवा तेज कुछ भी नहीं है॥4॥

दोहा :

अगुन अमान जानि तेहि दीन्ह पिता बनबास।
सो दुख अरु जुबती बिरह पुनि निसि दिन मम त्रास॥31 क॥

उसे गुणहीन और मानहीन समझकर ही तो पिता ने वनवास दे दिया। उसे एक तो वह (उसका) दुःख, उस पर युवती स्त्री का विरह और फिर रात-दिन मेरा डर बना रहता है॥31 (क)॥

जिन्ह के बल कर गर्ब तोहि अइसे मनुज अनेक।
खाहिं निसाचर दिवस निसि मूढ समुझु तजि टेक॥31 ख॥

जिनके बल का तुझे गर्व है, ऐसे अनेकों मनुष्यों को तो राक्षस रात-दिन खाया करते हैं। अरे मूढ! जिद्द छोड़कर समझ (विचार कर)॥ 31 (ख)॥

चौपाई :

जब तेहिं कीन्हि राम कै निंदा। क्रोधवंत अति भयउ कपिंदा॥
हरि हर निंदा सुनइ जो काना। होइ पाप गोघात समाना॥1॥

जब उसने श्री रामजी की निंदा की, तब तो कपिश्रेष्ठ अंगद अत्यंत क्रोधित हुए, क्योंकि (शास्त्र ऐसा कहते हैं कि) जो अपने कानों से भगवान् विष्णु और शिव की निंदा सुनता है, उसे गो वध के समान पाप होता है॥1॥

कटकटान कपिकुंजर भारी। दुहु भुजदंड तमकि महि मारी॥
डोलत धरनि सभासद खसे। चले भाजि भय मारुत ग्रसे॥2॥

वानर श्रेष्ठ अंगद बहुत जोर से कटकटाए (शब्द किया) और उन्होंने तमककर (जोर से) अपने दोनों भुजदण्डों को पृथ्वी पर दे मारा। पृथ्वी हिलने लगी, (जिससे बैठे हुए) सभासद् गिर पड़े और भय रूपी पवन (भूत) से ग्रस्त होकर भाग चले॥2॥

गिरत सँभारि उठा दसकंधर। भूतल परे मुकुट अति सुंदर॥
कछु तेहिं लै निज सिरन्हि सँवारे। कछु अंगद प्रभु पास पबारे॥3॥

रावण गिरते-गिरते सँभलकर उठा। उसके अत्यंत सुंदर मुकुट पृथ्वी पर गिर पड़े। कुछ तो उसने उठाकर अपने सिरों पर सुधाकर रख लिए और कुछ अंगद ने उठाकर प्रभु श्री रामचंद्रजी के पास फेंक दिए॥3॥

आवत मुकुट देखि कपि भागे। दिनहीं लूक परन बिधि लागे॥
की रावन करि कोप चलाए। कुलिस चारि आवत अति धाए॥4॥

मुकुटों को आते देखकर वानर भागे। (सोचने लगे) विधाता! क्या दिन में ही उल्कापात होने लगा (तारे टूटकर गिरने लगे)? अथवा क्या रावण ने क्रोध करके चार वज्र चलाए हैं, जो बड़े धाए के साथ (वेग से) आ रहे हैं?॥4॥

कह प्रभु हँसि जनि हृदयँ डेराहू। लूक न असनि केतु नहिं राहू॥
ए किरीट दसकंधर केरे। आवत बालितनय के प्रेरे॥5॥

प्रभु ने (उनसे) हँसकर कहा- मन में डरो नहीं। ये न उल्का हैं, न वज्र हैं और न केतु या राहु ही हैं। अरे भाई! ये तो रावण के मुकुट हैं, जो बालिपुत्र अंगद के फेंके हुए आ रहे हैं॥5॥

दोहा :

तरकि पवनसुत कर गहे आनि धरे प्रभु पास।
कौतुक देखहिं भालु कपि दिनकर सरिस प्रकास॥32 क॥

पवन पुत्र श्री हनुमान्‌जी ने उछलकर उनको हाथ से पकड़ लिया और लाकर प्रभु के पास रख दिया। रीछ और वानर तमाशा देखने लगे। उनका प्रकाश सूर्य के समान था॥32 (क)॥

उहाँ सकोपि दसानन सब सन कहत रिसाइ।
धरहु कपिहि धरि मारहु सुनि अंगद मुसुकाइ॥32 ख॥

वहाँ (सभा में) क्रोधयुक्त रावण सबसे क्रोधित होकर कहने लगा कि- बंदर को पकड़ लो और पकड़कर मार डालो। अंगद यह सुनकर मुस्कुराने लगे॥32 (ख)॥

चौपाई :

एहि बधि बेगि सुभट सब धावहु। खाहु भालु कपि जहँ जहँ पावहु॥
मर्कटहीन करहु महि जाई। जिअत धरहु तापस द्वौ भाई॥1॥

(रावण फिर बोला-) इसे मारकर सब योद्धा तुरंत दौड़ो और जहाँ कहीं रीछ-वानरों को पाओ, वहीं खा डालो। पृथ्वी को बंदरों से रहित कर दो और जाकर दोनों तपस्वी भाइयों (राम-लक्ष्मण) को जीते जी पकड़ लो॥1॥

पुनि सकोप बोलेउ जुबराजा। गाल बजावत तोहि न लाजा॥
मरु गर काटि निलज कुलघाती। बल बिलोकि बिहरति नहिं छाती॥2॥

(रावण के ये कोपभरे वचन सुनकर) तब युवराज अंगद क्रोधित होकर बोले- तुझे गाल बजाते लाज नहीं आती! अरे निर्लज्ज! अरे कुलनाशक! गला काटकर (आत्महत्या करके) मर जा! मेरा बल देखकर भी क्या तेरी छाती नहीं फटती!॥2॥

रे त्रिय चोर कुमारग गामी। खल मल रासि मंदमति कामी॥
सन्यपात जल्पसि दुर्बादा। भएसि कालबस खल मनुजादा॥3॥

अरे स्त्री के चोर! अरे कुमार्ग पर चलने वाले! अरे दुष्ट, पाप की राशि, मन्द बुद्धि और कामी! तू सन्निपात में क्या दुर्वचन बक रहा है? अरे दुष्ट राक्षस! तू काल के वश हो गया है!॥3॥

याको फलु पावहिगो आगें। बानर भालु चपेटन्हि लागें॥
रामु मनुज बोलत असि बानी। गिरहिं न तव रसना अभिमानी॥4॥

इसका फल तू आगे वानर और भालुओं के चपेटे लगने पर पावेगा। राम मनुष्य हैं, ऐसा वचन बोलते ही, अरे अभिमानी! तेरी जीभें नहीं गिर पड़तीं?॥4॥

गिरिहहिं रसना संसय नाहीं। सिरन्हि समेत समर महि माहीं॥5॥

इसमें संदेह नहीं है कि तेरी जीभें (अकेले नहीं वरन) सिरों के साथ रणभूमि में गिरेंगी॥5॥

सोरठा :

सो नर क्यों दसकंध बालि बध्यो जेहिं एक सर।
बीसहुँ लोचन अंध धिग तव जन्म कुजाति जड़॥33 क॥

रे दशकन्ध! जिसने एक ही बाण से बालि को मार डाला, वह मनुष्य कैसे है? अरे कुजाति, अरे जड़! बीस आँखें होने पर भी तू अंधा है। तेरे जन्म को धिक्कार है॥33 (क)॥

तव सोनित कीं प्यास तृषित राम सायक निकर।

तजउँ तोहि तेहि त्रास कटु जल्पक निसिचर अधम॥33 ख॥

श्री रामचंद्रजी के बाण समूह तेरे रक्त की प्यास से प्यासे हैं। (वे प्यासे ही रह जाएँगे) इस डर से, अरे कड़वी बकवाद करने वाले नीच राक्षस! मैं तुझे छोड़ता हूँ॥33 (ख)॥

चौपाई :

मैं तव दसन तोरिबे लायक। आयसु मोहि न दीन्ह रघुनायक॥
असि रिस होति दसउ मुख तोरौं। लंका गहि समुद्र महँ बोरौं॥1॥

मैं तेरे दाँत तोड़ने में समर्थ हूँ। पर क्या करूँ? श्री रघुनाथजी ने मुझे आज्ञा नहीं दी। ऐसा क्रोध आता है कि तेरे दसों मुँह तोड़ डालूँ और (तेरी) लंका को पकड़कर समुद्र में डुबो दूँ॥1॥

गूलरि फल समान तव लंका। बसहु मध्य तुम्ह जंतु असंका॥
मैं बानर फल खात न बारा। आयसु दीन्ह न राम उदारा॥2॥

तेरी लंका गूलर के फल के समान है। तुम सब कीड़े उसके भीतर (अज्ञानवश) निडर होकर बस रहे हो। मैं बंदर हूँ, मुझे इस फल को खाते क्या देर थी? पर उदार (कृपालु) श्री रामचंद्रजी ने वैसी आज्ञा नहीं दी॥2॥

जुगुति सुनत रावन मुसुकाई। मूढ सिखिहि कहँ बहुत झुठाई॥
बालि न कबहुँ गाल अस मारा। मिलि तपसिन्ह तैं भएसि लबारा॥3॥

अंगद की युक्ति सुनकर रावण मुस्कुराया (और बोला-) अरे मूर्ख! बहुत झूठ बोलना तूने कहाँ से सीखा? बालि ने तो कभी ऐसा गाल नहीं मारा। जान पड़ता है तू तपस्वियों से मिलकर लबार हो गया है॥3॥

साँचेहुँ मैं लबार भुज बीहा। जौं न उपारिउँ तव दस जीहा॥
समुझि राम प्रताप कपि कोपा। सभा माझ पन करि पद रोपा॥4॥

(अंगद ने कहा-) अरे बीस भुजा वाले! यदि तेरी दसों जीभें मैंने नहीं उखाड़ लीं तो सचमुच मैं लबार ही हूँ। श्री रामचंद्रजी के प्रताप को समझकर (स्मरण करके) अंगद क्रोधित हो उठे और उन्होंने रावण की सभा में प्रण करके (दृढ़ता के साथ) पैर रोप दिया॥4॥

जौं मम चरन सकसि सठ टारी। फिरहिं रामु सीता मैं हारी॥
सुनहु सुभट सब कह दससीसा। पद गहि धरनि पछारहु कीसा॥5॥

(और कहा-) अरे मूर्ख! यदि तू मेरा चरण हटा सके तो श्री रामजी लौट जाएँगे, मैं सीताजी को हार गया। रावण ने कहा- हे सब वीरो! सुनो, पैर पकड़कर बंदर को पृथ्वी पर पछाड़ दो॥5॥

इंद्रजीत आदिक बलवाना। हरषि उठे जहँ तहँ भट नाना॥
झपटहिं करि बल बिपुल उपाई। पद न टरइ बैठहिं सिरु नाई॥6॥

इंद्रजीत (मेघनाद) आदि अनेकों बलवान् योद्धा जहाँ-तहाँ से हर्षित होकर उठे। वे पूरे बल से बहुत से उपाय करके झपटते हैं। पर पैर टलता नहीं, तब सिर नीचा करके फिर अपने-अपने स्थान पर जा बैठ जाते हैं॥6॥

पुनि उठि झपटहिं सुर आराती। टरइ न कीस चरन एहि भाँती॥
पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी। मोह बिटप नहिं सकहिं उपारी॥7॥

(काकभुशुण्डिजी कहते हैं-) वे देवताओं के शत्रु (राक्षस) फिर उठकर झपटते हैं, परन्तु हे सर्पों के शत्रु गरुड़जी! अंगद का चरण उनसे वैसे ही नहीं टलता जैसे कुयोगी (विषयी) पुरुष मोह रूपी वृक्ष को नहीं उखाड़ सकते॥7॥

दोहा :

कोटिन्ह मेघनाद सम सुभट उठे हरषाइ।
झपटहिं टरै न कपि चरन पुनि बैठहिं सिर नाइ॥34 क॥

करोड़ों वीर योद्धा जो बल में मेघनाद के समान थे, हर्षित होकर उठे, वे बार-बार झपटते हैं, पर वानर का चरण नहीं उठता, तब लज्जा के मारे सिर नवाकर बैठ जाते हैं॥34 (क)॥

भूमि न छाँड़त कपि चरन देखत रिपु मद भाग।
कोटि बिघ्न ते संत कर मन जिमि नीति न त्याग॥34 ख॥

जैसे करोड़ों विघ्न आने पर भी संत का मन नीति को नहीं छोड़ता, वैसे ही वानर (अंगद) का चरण पृथ्वी को नहीं छोड़ता। यह देखकर शत्रु (रावण) का मद दूर हो गया!॥34 (ख)॥

चौपाई :

कपि बल देखि सकल हियँ हारे। उठा आपु कपि कें परचारे॥
गहत चरन कह बालिकुमारा। मम पद गहें न तोर उबारा॥1॥

अंगद का बल देखकर सब हृदय में हार गए। तब अंगद के ललकारने पर रावण स्वयं उठा। जब वह अंगद का चरण पकड़ने लगा, तब बालि कुमार अंगद ने कहा- मेरा चरण पकड़ने से तेरा बचाव नहीं होगा!॥1॥

गहसि न राम चरन सठ जाई॥ सुनत फिरा मन अति सकुचाई॥
भयउ तेजहत श्री सब गई। मध्य दिवस जिमि ससि सोहई॥2॥

अरे मूर्ख- तू जाकर श्री रामजी के चरण क्यों नहीं पकड़ता? यह सुनकर वह मन में बहुत ही सकुचाकर लौट गया। उसकी सारी श्री जाती रही। वह ऐसा तेजहीन हो गया जैसे मध्याह्न में चंद्रमा दिखाई देता है॥2॥

सिंघासन बैठेउ सिर नाई। मानहुँ संपति सकल गँवाई॥

जगदातमा प्रानपति रामा। तासु बिमुख किमि लह बिश्रामा॥3॥

वह सिर नीचा करके सिंहासन पर जा बैठा। मानो सारी सम्पत्ति गँवाकर बैठा हो। श्री रामचंद्रजी जगत्‌भर के आत्मा और प्राणों के स्वामी हैं। उनसे विमुख रहने वाला शांति कैसे पा सकता है?॥3॥

उमा राम की भृकुटि बिलासा। होइ बिस्व पुनि पावइ नासा॥
तृन ते कुलिस कुलिस तृन करई। तासु दूत पन कहु किमि टरई॥4॥

(शिवजी कहते हैं-) हे उमा! जिन श्री रामचंद्रजी के भ्रूविलास (भौंह के इशारे) से विश्व उत्पन्न होता है और फिर नाश को प्राप्त होता है, जो तृण को वज्र और वज्र को तृण बना देते हैं (अत्यंत निर्बल को महान् प्रबल और महान् प्रबल को अत्यंत निर्बल कर देते हैं), उनके दूत का प्रण कहो, कैसे टल सकता है?॥4॥

पुनि कपि कही नीति बिधि नाना। मान न ताहि कालु निअराना॥
रिपु मद मथि प्रभु सुजसु सुनायो। यह कहि चल्यो बालि नृप जायो॥5॥

फिर अंगद ने अनेकों प्रकार से नीति कही। पर रावण नहीं माना, क्योंकि उसका काल निकट आ गया था। शत्रु के गर्व को चूर करके अंगद ने उसको प्रभु श्री रामचंद्रजी का सुयश सुनाया और फिर वह राजा बालि का पुत्र यह कहकर चल दिया-॥5॥

हतौं न खेत खेलाइ खेलाई। तोहि अबहिं का करौं बड़ाई॥
प्रथमहिं तासु तनय कपि मारा। सो सुनि रावन भयउ दुखारा॥6॥

रणभूमि में तुझे खेला-खेलाकर न मारूँ तब तक अभी (पहले से) क्या बड़ाई करूँ। अंगद ने पहले ही (सभा में आने से पूर्व ही) उसके पुत्र को मार डाला था। वह संवाद सुनकर रावण दुःखी हो गया॥6॥

जातुधान अंगद पन देखी। भय ब्याकुल सब भए बिसेषी॥7॥

अंगद का प्रण (सफल) देखकर सब राक्षस भय से अत्यन्त ही व्याकुल हो गए॥7॥

दोहा :

रिपु बल धरषि हरषि कपि बालितनय बल पुंज।
पुलक सरीर नयन जल गहे राम पद कंज॥35 क॥

शत्रु के बल का मर्दन कर, बल की राशि बालि पुत्र अंगदजी ने हर्षित होकर आकर श्री रामचंद्रजी के चरणकमल पकड़ लिए। उनका शरीर पुलकित है और नेत्रों में (आनंदाश्रुओं का) जल भरा है॥35 (क)॥

साँझ जानि दसकंधर भवन गयउ बिलखाइ।
मंदोदरीं रावनहिं बहुरि कहा समुझाइ॥35 ख॥

सन्ध्या हो गई जानकर दशग्रीव बिलखता हुआ (उदास होकर) महल में गया। मन्दोदरी ने रावण को समझाकर फिर कहा-॥35 (ख)॥

चौपाई :

कंत समुझि मन तजहु कुमतिही। सोह न समर तुम्हहि रघुपतिही॥
रामानुज लघु रेख खचाई। सोउ नहिं नाघेहु असि मनुसाई॥1॥

हे कान्त! मन में समझकर (विचारकर) कुबुद्धि को छोड़ दो। आप से और श्री रघुनाथजी से युद्ध शोभा नहीं देता। उनके छोटे भाई ने एक जरा सी रेखा खींच दी थी, उसे भी आप नहीं लाँघ सके, ऐसा तो आपका पुरुषत्व है॥1॥

पिय तुम्ह ताहि जितब संग्रामा। जाके दूत केर यह कामा॥
कौतुक सिंधु नाघि तव लंका। आयउ कपि केहरी असंका॥2॥

हे प्रियतम! आप उन्हें संग्राम में जीत पाएँगे, जिनके दूत का ऐसा काम है? खेल से ही समुद्र लाँघकर वह वानरों में सिंह (हनुमान्) आपकी लंका में निर्भय चला आया!॥2॥

रखवारे हति बिपिन उजारा। देखत तोहि अच्छ तेहिं मारा॥
जारि सकल पुर कीन्हेसि छारा। कहाँ रहा बल गर्ब तुम्हारा॥3॥

रखवालों को मारकर उसने अशोक वन उजाड़ डाला। आपके देखते-देखते उसने अक्षयकुमार को मार डाला और संपूर्ण नगर को जलाकर राख कर दिया। उस समय आपके बल का गर्व कहाँ चला गया था?॥3॥

अब पति मृषा गाल जनि मारहु। मोर कहा कछु हृदयँ बिचारहु॥
पति रघुपतिहि नृपति जनि मानहु। अग जग नाथ अतुलबल जानहु॥4॥

अब हे स्वामी! झूठ (व्यर्थ) गाल न मारिए (डींग न हाँकिए) मेरे कहने पर हृदय में कुछ विचार कीजिए। हे पति! आप श्री रघुपति को (निरा) राजा मत समझिए, बल्कि अग-जगनाथ (चराचर के स्वामी) और अतुलनीय बलवान् जानिए॥4॥

बान प्रताप जान मारीचा। तासु कहा नहिं मानेहि नीचा॥
जनक सभाँ अगनित भूपाला। रहे तुम्हउ बल अतुल बिसाला॥5॥

श्री रामजी के बाण का प्रताप तो नीच मारीच भी जानता था, परन्तु आपने उसका कहना भी नहीं माना। जनक की सभा में अगणित राजागण थे। वहाँ विशाल और अतुलनीय बल वाले आप भी थे॥5॥

भंजि धनुष जानकी बिआही। तब संग्राम जितेहु किन ताही॥
सुरपति सुत जानइ बल थोरा। राखा जिअत आँखि गहि फोरा॥6॥

वहाँ शिवजी का धनुष तोड़कर श्री रामजी ने जानकी को ब्याहा, तब आपने उनको संग्राम में क्यों नहीं जीता? इंद्रपुत्र जयन्त उनके बल को कुछ-कुछ जानता है। श्री रामजी ने पकड़कर, केवल उसकी एक आँख ही फोड़ दी और उसे जीवित ही छोड़ दिया॥6॥

सूपनखा कै गति तुम्ह देखी। तदपि हृदयँ नहिं लाज बिसेषी॥7॥

शूर्पणखा की दशा तो आपने देख ही ली। तो भी आपके हृदय में (उनसे लड़ने की बात सोचते) विशेष (कुछ भी) लज्जा नहीं आती!॥7॥

दोहा :

बधि बिराध खर दूषनहि लीलाँ हत्यो कबंध।
बालि एक सर मार्‌यो तेहि जानहु दसकंध॥36॥

जिन्होंने विराध और खर-दूषण को मारकर लीला से ही कबन्ध को भी मार डाला और जिन्होंने बालि को एक ही बाण से मार दिया, हे दशकन्ध! आप उन्हें (उनके महत्व को) समझिए!॥36॥

चौपाई :

जेहिं जलनाथ बँधायउ हेला। उतरे प्रभु दल सहित सुबेला॥
कारुनीक दिनकर कुल केतू। दूत पठायउ तव हित हेतू॥1॥

जिन्होंने खेल से ही समुद्र को बँधा लिया और जो प्रभु सेना सहित सुबेल पर्वत पर उतर पड़े, उन सूर्यकुल के ध्वजास्वरूप (कीर्ति को बढ़ाने वाले) करुणामय भगवान् ने आप ही के हित के लिए दूत भेजा॥1॥

सभा माझ जेहिं तव बल मथा। करि बरूथ महुँ मृगपति जथा॥
अंगद हनुमत अनुचर जाके। रन बाँकुरे बीर अति बाँके॥2॥

जिसने बीच सभा में आकर आपके बल को उसी प्रकार मथ डाला जैसे हाथियों के झुंड में आकर सिंह (उसे छिन्न-भिन्न कर डालता है) रण में बाँके अत्यंत विकट वीर अंगद और हनुमान् जिनके सेवक हैं,॥2॥

तेहि कहँ पिय पुनि पुनि नर कहहू। मुधा मान ममता मद बहहू॥
अहह कंत कृत राम बिरोधा। काल बिबस मन उपज न बोधा॥3॥

हे पति! उन्हें आप बार-बार मनुष्य कहते हैं। आप व्यर्थ ही मान, ममता और मद का बोझ ढो रहे हैं! हा प्रियतम! आपने श्री रामजी से विरोध कर लिया और काल के विशेष वश होने से आपके मन में अब भी ज्ञान नहीं उत्पन्न होता॥3॥

काल दंड गहि काहु न मारा। हरइ धर्म बल बुद्धि बिचारा॥
निकट काल जेहि आवत साईं। तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहि नाईं॥4॥

काल दण्ड (लाठी) लेकर किसी को नहीं मारता। वह धर्म, बल, बुद्धि और विचार को हर लेता है। हे स्वामी! जिसका काल (मरण समय) निकट आ जाता है, उसे आप ही की तरह भ्रम हो जाता है॥4॥

दोहा :

दुइ सुत मरे दहेउ पुर अजहुँ पूर पिय देहु।
कृपासिंधु रघुनाथ भजि नाथ बिमल जसु लेहु॥37॥

आपके दो पुत्र मारे गए और नगर जल गया। (जो हुआ सो हुआ) हे प्रियतम! अब भी (इस भूल की) पूर्ति (समाप्ति) कर दीजिए (श्री रामजी से वैर त्याग दीजिए) और हे नाथ! कृपा के समुद्र श्री रघुनाथजी को भजकर निर्मल यश लीजिए॥37॥

चौपाई :

नारि बचन सुनि बिसिख समाना। सभाँ गयउ उठि होत बिहाना॥
बैठ जाइ सिंघासन फूली। अति अभिमान त्रास सब भूली॥1॥

स्त्री के बाण के समान वचन सुनकर वह सबेरा होते ही उठकर सभा में चला गया और सारा भय भुलाकर अत्यंत अभिमान में फूलकर सिंहासन पर जा बैठा॥1॥

दोहा :

जयति राम जय लछिमन जय कपीस सुग्रीव।
गर्जहिं सिंहनाद कपि भालु महा बल सींव॥39॥

महान् बल की सीमा वे वानर-भालू सिंह के समान ऊँचे स्वर से 'श्री रामजी की जय', 'लक्ष्मणजी की जय', 'वानरराज सुग्रीव की जय'- ऐसी गर्जना करने लगे॥39॥

चौपाई :

लंकाँ भयउ कोलाहल भारी। सुना दसानन अति अहँकारी॥
देखहु बनरन्ह केरि ढिठाई। बिहँसि निसाचर सेन बोलाई॥1॥

लंका में बड़ा भारी कोलाहल (कोहराम) मच गया। अत्यंत अहंकारी रावण ने उसे सुनकर कहा- वानरों की ढिठाई तो देखो! यह कहते हुए हँसकर उसने राक्षसों की सेना बुलाई॥1॥

आए कीस काल के प्रेरे। छुधावंत सब निसिचर मेरे॥
बअस कहि अट्टहास सठ कीन्हा। गृह बैठें अहार बिधि दीन्हा॥2॥

बंदर काल की प्रेरणा से चले आए हैं। मेरे राक्षस सभी भूखे हैं। विधाता ने इन्हें घर बैठे भोजन

भेज दिया। ऐसा कहकर उस मूर्ख ने अट्टहास किया (वह बड़े जोर से ठहाका मारकर हँसा)॥2॥

सुभट सकल चारिहुँ दिसि जाहू। धरि धरि भालु कीस सब खाहू॥
उमा रावनहि अस अभिमाना। जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना॥3॥

(और बोला-) हे वीरों! सब लोग चारों दिशाओं में जाओ और रीछ-वानर सबको पकड़-पकड़कर खाओ। (शिवजी कहते हैं-) हे उमा! रावण को ऐसा अभिमान था जैसा टिटिहिरी पक्षी पैर ऊपर की ओर करके सोता है (मानो आकाश को थाम लेगा)॥3॥

चले निसाचर आयसु मागी। गहि कर भिंडिपाल बर साँगी॥
तोमर मुद्गर परसु प्रचंडा। सूल कृपान परिघ गिरिखंडा॥4॥

आज्ञा माँगकर और हाथों में उत्तम भिंदिपाल, साँगी (बरछी), तोमर, मुद्गर, प्रचण्ड फरसे, शूल, दोधारी तलवार, परिघ और पहाड़ों के टुकड़े लेकर राक्षस चले॥4॥

जिमि अरुनोपल निकर निहारी। धावहिं सठ खग मांस अहारी॥
चोंच भंग दुख तिन्हहि न सूझा। तिमि धाए मनुजाद अबूझा॥5॥

जैसे मूर्ख मांसाहारी पक्षी लाल पत्थरों का समूह देखकर उस पर टूट पड़ते हैं, (पत्थरों पर लगने से) चोंच टूटने का दुःख उन्हें नहीं सूझता, वैसे ही ये बेसमझ राक्षस दौड़े॥5॥

दोहा :

नानायुध सर चाप धर जातुधान बल बीर।
कोट कँगूरन्हि चढ़ि गए कोटि कोटि रनधीर॥40॥

अनेकों प्रकार के अस्त्र-शस्त्र और धनुष-बाण धारण किए करोड़ों बलवान् और रणधीर राक्षस वीर परकोटे के कँगूरों पर चढ़ गए॥40॥

चौपाई :

कोट कँगूरन्हि सोहहिं कैसे। मेरु के सृंगनि जनु घन बैसे॥
बाजहिं ढोल निसान जुझाऊ। सुनि धुनि होइ भटन्हि मन चाऊ॥1॥

वे परकोटे के कँगूरों पर कैसे शोभित हो रहे हैं, मानो सुमेरु के शिखरों पर बादल बैठे हों। जुझाऊ ढोल और डंके आदि बज रहे हैं, (जिनकी) ध्वनि सुनकर योद्धाओं के मन में (लड़ने का) चाव होता है॥1॥

बाजहिं भेरि नफीरि अपारा। सुनि कादर उर जाहिं दरारा॥
देखिन्ह जाइ कपिन्ह के ठट्टा। अति बिसाल तनु भालु सुभट्टा॥2॥

अगणित नफीरी और भेरी बज रही है, (जिन्हें) सुनकर कायरों के हृदय में दरारें पड़ जाती हैं। उन्होंने जाकर अत्यन्त विशाल शरीर वाले महान् योद्धा वानर और भालुओं के ठट्ट (समूह)

देखे॥2॥

धावहिं गनहिं न अवघट घाटा। पर्बत फोरि करहिं गहि बाटा॥
कटकटाहिं कोटिन्ह भट गर्जहिं। दसन ओठ काटहिं अति तर्जहिं॥3॥

(देखा कि) वे रीछ-वानर दौड़ते हैं, औघट (ऊँची-नीची, विकट) घाटियों को कुछ नहीं गिनते। पकड़कर पहाड़ों को फोड़कर रास्ता बना लेते हैं। करोड़ों योद्धा कटकटाते और गर्जते हैं। दाँतों से होठ काटते और खूब डपटते हैं॥3॥

उत रावन इत राम दोहाई। जयति जयति जय परी लराई॥
निसिचर सिखर समूह ढहावहिं। कूदि धरहिं कपि फेरि चलावहिं॥4॥

उधर रावण की और इधर श्री रामजी की दुहाई बोली जा रही है। 'जय' 'जय' 'जय' की ध्वनि होते ही लड़ाई छिड़ गई। राक्षस पहाड़ों के ढेर के ढेर शिखरों को फेंकते हैं। वानर कूदकर उन्हें पकड़ लेते हैं और वापस उन्हीं की ओर चलाते हैं॥4॥

छंद :

धरि कुधर खंड प्रचंड मर्कट भालु गढ़ पर डारहीं।
झपटहिं चरन गहि पटकि महि भजि चलत बहुरि पचारहीं॥
अति तरल तरुन प्रताप तरपहिं तमकि गढ़ चढ़ि चढ़ि गए।
कपि भालु चढ़ि मंदिरन्ह जहँ तहँ राम जसु गावत भए॥

प्रचण्ड वानर और भालू पर्वतों के टुकड़े ले-लेकर किले पर डालते हैं। वे झपटते हैं और राक्षसों के पैर पकड़कर उन्हें पृथ्वी पर पटककर भाग चलते हैं और फिर ललकारते हैं। बहुत ही चंचल और बड़े तेजस्वी वानर-भालू बड़ी फुर्ती से उछलकर किले पर चढ़-चढ़कर गए और जहाँ-तहाँ महलों में घुसकर श्री रामजी का यश गाने लगे।

दोहा :

एकु एकु निसिचर गहि पुनि कपि चले पराइ।
ऊपर आपु हेठ भट गिरहिं धरनि पर आइ॥41॥

फिर एक-एक राक्षस को पकड़कर वे वानर भाग चले। ऊपर आप और नीचे (राक्षस) योद्धा- इस प्रकार वे (किले से) धरती पर आ गिरते हैं॥41॥

चौपाई :

राम प्रताप प्रबल कपिजूथा। मर्दहिं निसिचर सुभट बरूथा॥
चढ़े दुर्ग पुनि जहँ तहँ बानर। जय रघुबीर प्रताप दिवाकर॥1॥

श्री रामजी के प्रताप से प्रबल वानरों के झुंड राक्षस योद्धाओं के समूह के समूह मसल रहे हैं।

वानर फिर जहाँ-तहाँ किले पर चढ़ गए और प्रताप में सूर्य के समान श्री रघुवीर की जय बोलने लगे॥1॥

चले निसाचर निकर पराई। प्रबल पवन जिमि घन समुदाई॥
हाहाकार भयउ पुर भारी। रोवहिं बालक आतुर नारी॥2॥

राक्षसों के झुंड वैसे ही भाग चले जैसे जोर की हवा चलने पर बादलों के समूह तितर-बितर हो जाते हैं। लंका नगरी में बड़ा भारी हाहाकार मच गया। बालक, स्त्रियाँ और रोगी (असमर्थता के कारण) रोने लगे॥2॥

सब मिलि देहिं रावनहि गारी। राज करत एहिं मृत्यु हँकारी॥
निज दल बिचल सुनी तेहिं काना। फेरि सुभट लंकेस रिसाना॥3॥

सब मिलकर रावण को गालियाँ देने लगे कि राज्य करते हुए इसने मृत्यु को बुला लिया। रावण ने जब अपनी सेना का विचलित होना कानों से सुना, तब (भागते हुए) योद्धाओं को लौटाकर वह क्रोधित होकर बोला-॥3॥

जो रन बिमुख सुना मैं काना। सो मैं हतब कराल कृपाना॥
सर्बसु खाइ भोग करि नाना। समर भूमि भए बल्लभ प्राना॥4॥

मैं जिसे रण से पीठ देकर भागा हुआ अपने कानों सुनूँगा, उसे स्वयं भयानक दोधारी तलवार से मारूँगा। मेरा सब कुछ खाया, भाँति-भाँति के भोग किए और अब रणभूमि में प्राण प्यारे हो गए!॥4॥

उग्र बचन सुनि सकल डेराने। चले क्रोध करि सुभट लजाने॥
सन्मुख मरन बीर कै सोभा। तब तिन्ह तजा प्रान कर लोभा॥5॥

रावण के उग्र (कठोर) वचन सुनकर सब वीर डर गए और लज्जित होकर क्रोध करके युद्ध के लिए लौट चले। रण में (शत्रु के) सम्मुख (युद्ध करते हुए) मरने में ही वीर की शोभा है। (यह सोचकर) तब उन्होंने प्राणों का लोभ छोड़ दिया॥5॥

दोहा :

बहु आयुध धर सुभट सब भिरहिं पचारि पचारि।
ब्याकुल किए भालु कपि परिघ त्रिसूलन्हि मारि॥42॥

बहुत से अस्त्र-शस्त्र धारण किए, सब वीर ललकार-ललकारकर भिड़ने लगे। उन्होंने परिघों और त्रिशूलों से मार-मारकर सब रीछ-वानरों को व्याकुल कर दिया॥42॥

चौपाई :

भय आतुर कपि भागत लागे। जद्यपि उमा जीतिहहिं आगे॥

कोउ कह कहँ अंगद हनुमंता। कहँ नल नील दुबिद बलवंता॥1॥

(शिवजी कहते हैं-) वानर भयातुर होकर (डर के मारे घबड़ाकर) भागने लगे, यद्यपि हे उमा! आगे चलकर (वे ही) जीतेंगे। कोई कहता है- अंगद-हनुमान् कहाँ हैं? बलवान् नल, नील और द्विविद कहाँ हैं?॥1॥

निज दल बिकल सुना हनुमाना। पच्छिम द्वार रहा बलवाना॥
मेघनाद तहँ करइ लराई। टूट न द्वार परम कठिनाई॥2॥

हनुमान्‌जी ने जब अपने दल को विकल (भयभीत) हुआ सुना, उस समय वे बलवान् पश्चिम द्वार पर थे। वहाँ उनसे मेघनाद युद्ध कर रहा था। वह द्वार टूटता न था, बड़ी भारी कठिनाई हो रही थी॥2॥

पवनतनय मन भा अति क्रोधा। गर्जेउ प्रबल काल सम जोधा॥
कूदि लंक गढ़ ऊपर आवा। गहि गिरि मेघनाद कहुँ धावा॥3॥

तब पवनपुत्र हनुमान्‌जी के मन में बड़ा भारी क्रोध हुआ। वे काल के समान योद्धा बड़े जोर से गरजे और कूदकर लंका के किले पर आ गए और पहाड़ लेकर मेघनाद की ओर दौड़े॥3॥

भंजेउ रथ सारथी निपाता। ताहि हृदय महुँ मारेसि लाता॥
दुसरें सूत बिकल तेहि जाना। स्यंदन घालि तुरत गृह आना॥4॥

रथ तोड़ डाला, सारथी को मार गिराया और मेघनाद की छाती में लात मारी। दूसरा सारथी मेघनाद को व्याकुल जानकर, उसे रथ में डालकर, तुरंत घर ले आया॥4॥

दोहा :

अंगद सुना पवनसुत गढ़ पर गयउ अकेल।
रन बाँकुरा बालिसुत तरकि चढ़ेउ कपि खेल॥43॥

इधर अंगद ने सुना कि पवनपुत्र हनुमान् किले पर अकेले ही गए हैं, तो रण में बाँके बालि पुत्र वानर के खेल की तरह उछलकर किले पर चढ़ गए॥43॥

चौपाई :

जुद्ध बिरुद्ध क्रुद्ध द्वौ बंदर। राम प्रताप सुमिरि उर अंतर॥
रावन भवन चढ़े द्वौ धाई। करहिं कोसलाधीस दोहाई॥1॥

युद्ध में शत्रुओं के विरुद्ध दोनों वानर क्रुद्ध हो गए। हृदय में श्री रामजी के प्रताप का स्मरण करके दोनों दौड़कर रावण के महल पर जा चढ़े और कोसलराज श्री रामजी की दुहाई बोलने लगे॥1॥

कलस सहित गहि भवनु ढहावा। देखि निसाचरपति भय पावा॥

नारि बृंद कर पीटहिं छाती। अब दुइ कपि आए उतपाती॥2॥

उन्होंने कलश सहित महल को पकड़कर ढहा दिया। यह देखकर राक्षस राज रावण डर गया। सब स्त्रियाँ हाथों से छाती पीटने लगीं (और कहने लगीं-) अब की बार दो उत्पाती वानर (एक साथ) आ गए हैं॥2॥

कपिलीला करि तिन्हहि डेरावहिं। रामचंद्र कर सुजसु सुनावहिं॥
पुनि कर गहि कंचन के खंभा। कहेन्हि करिअ उतपात अरंभा॥3॥

वानरलीला करके (घुड़की देकर) दोनों उनको डराते हैं और श्री रामचंद्रजी का सुंदर यश सुनाते हैं। फिर सोने के खंभों को हाथों से पकड़कर उन्होंने (परस्पर) कहा कि अब उत्पात आरंभ किया जाए॥3॥

गर्जि परे रिपु कटक मझारी। लागे मर्दै भुज बल भारी॥
काहुहि लात चपेटन्हि केहू। भजहु न रामहि सो फल लेहू॥4॥

वे गर्जकर शत्रु की सेना के बीच में कूद पड़े और अपने भारी भुजबल से उसका मर्दन करने लगे। किसी की लात से और किसी की थप्पड़ से खबर लेते हैं (और कहते हैं कि) तुम श्री रामजी को नहीं भजते, उसका यह फल लो॥4॥

दोहा :

एक एक सों मर्दहिं तोरि चलावहिं मुंड।
रावन आगें परहिं ते जनु फूटहिं दधि कुंड॥44॥

एक को दूसरे से (रगड़कर) मसल डालते हैं और सिरों को तोड़कर फेंकते हैं। वे सिर जाकर रावण के सामने गिरते हैं और ऐसे फूटते हैं, मानो दही के कूंडे फूट रहे हों॥4॥

चौपाई :

महा महा मुखिआ जे पावहिं। ते पद गहि प्रभु पास चलावहिं॥
कहइ बिभीषनु तिन्ह के नामा। देहिं राम तिन्हहू निज धामा॥1॥

जिन बड़े-बड़े मुखियों (प्रधान सेनापतियों) को पकड़ पाते हैं, उनके पैर पकड़कर उन्हें प्रभु के पास फेंक देते हैं। विभीषणजी उनके नाम बतलाते हैं और श्री रामजी उन्हें भी अपना धाम (परम पद) दे देते हैं॥1॥

खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। पावहिं गति जो जाचत जोगी॥
उमा राम मृदुचित करुनाकर। बयर भाव सुमिरत मोहि निसिचर॥2॥

ब्राह्मणों का मांस खाने वाले वे नरभोजी दुष्ट राक्षस भी वह परम गति पाते हैं, जिसकी योगी भी याचना किया करते हैं, (परन्तु सहज में नहीं पाते)। (शिवजी कहते हैं-) हे उमा! श्री रामजी बड़े ही

कोमल हृदय और करुणा की खान हैं। (वे सोचते हैं कि) राक्षस मुझे वैरभाव से ही सही, स्मरण तो करते ही हैं॥2॥

देहिं परम गति सो जियँ जानी। अस कृपाल को कहहु भवानी॥
अस प्रभु सुनि न भजहिं भ्रम त्यागी। नर मतिमंद ते परम अभागी॥3॥

ऐसा हृदय में जानकर वे उन्हें परमगति (मोक्ष) देते हैं। हे भवानी! कहो तो ऐसे कृपालु (और) कौन हैं? प्रभु का ऐसा स्वभाव सुनकर भी जो मनुष्य भ्रम त्याग कर उनका भजन नहीं करते, वे अत्यंत मंदबुद्धि और परम भाग्यहीन हैं॥3॥

अंगद अरु हनुमंत प्रबेसा। कीन्ह दुर्ग अस कह अवधेसा॥
लंकाँ द्वौ कपि सोहहिं कैसें। मथहिं सिंधु दुइ मंदर जैसें॥4॥

श्री रामजी ने कहा कि अंगद और हनुमान किले में घुस गए हैं। दोनों वानर लंका में (विध्वंस करते) कैसे शोभा देते हैं, जैसे दो मन्दराचल समुद्र को मथ रहे हों॥4॥ दोहा :

दोहा :

भुज बल रिपु दल दलमलि देखि दिवस कर अंत।
कूदे जुगल बिगत श्रम आए जहँ भगवंत॥45॥

भुजाओं के बल से शत्रु की सेना को कुचलकर और मसलकर, फिर दिन का अंत होता देखकर हनुमान् और अंगद दोनों कूद पड़े और श्रम थकावट रहित होकर वहाँ आ गए, जहाँ भगवान् श्री रामजी थे॥45॥

चौपाई :

प्रभु पद कमल सीस तिन्ह नाए। देखि सुभट रघुपति मन भाए॥
राम कृपा करि जुगल निहारे। भए बिगतश्रम परम सुखारे॥1॥

उन्होंने प्रभु के चरण कमलों में सिर नवाए। उत्तम योद्धाओं को देखकर श्री रघुनाथजी मन में बहुत प्रसन्न हुए। श्री रामजी ने कृपा करके दोनों को देखा, जिससे वे श्रमरहित और परम सुखी हो गए॥1॥

गए जानि अंगद हनुमाना। फिरे भालु मर्कट भट नाना॥
जातुधान प्रदोष बल पाई। धाए करि दससीस दोहाई॥2॥

अंगद और हनुमान् को गए जानकर सभी भालू और वानर वीर लौट पड़े। राक्षसों ने प्रदोष (सायं) काल का बल पाकर रावण की दुहाई देते हुए वानरों पर धावा किया॥2॥

निसिचर अनी देखि कपि फिरे। जहँ तहँ कटकटाइ भट भिरे॥
द्वौ दल प्रबल पचारि पचारी। लरत सुभट नहिं मानहिं हारी॥3॥

राक्षसों की सेना आती देखकर वानर लौट पड़े और वे योद्धा जहाँ-तहाँ कटकटाकर भिड़ गए। दोनों ही दल बड़े बलवान् हैं। योद्धा ललकार-ललकारकर लड़ते हैं, कोई हार नहीं मानते॥3॥

महाबीर निसिचर सब कारे। नाना बरन बलीमुख भारे॥
सबल जुगल दल समबल जोधा। कौतुक करत लरत करि क्रोधा॥4॥

सभी राक्षस महान् वीर और अत्यंत काले हैं और वानर विशालकाय तथा अनेकों रंगों के हैं। दोनों ही दल बलवान् हैं और समान बल वाले योद्धा हैं। वे क्रोध करके लड़ते हैं और खेल करते (वीरता दिखलाते) हैं॥4॥

प्राबिट सरद पयोद घनेरे। लरत मनहुँ मारुत के प्रेरे॥
अनिप अकंपन अरु अतिकाया। बिचलत सेन कीन्हि इन्ह माया॥5॥

(राक्षस और वानर युद्ध करते हुए ऐसे जान पड़ते हैं) मानो क्रमशः वर्षा और शरद् ऋतु में बहुत से बादल पवन से प्रेरित होकर लड़ रहे हों। अकंपन और अतिकाय इन सेनापतियों ने अपनी सेना को विचलित होते देखकर माया की॥5॥

भयउ निमिष महँ अति अँधिआरा। बृष्टि होइ रुधिरोपल छारा॥6॥

पलभर में अत्यंत अंधकार हो गया। खून, पत्थर और राख की वर्षा होने लगी॥6॥

दोहा :

देखि निबिड़ तम दसहुँ दिसि कपिदल भयउ खभार।
एकहि एक न देखई जहँ तहँ करहिं पुकार॥46॥

दसों दिशाओं में अत्यंत घना अंधकार देखकर वानरों की सेना में खलबली पड़ गई। एक को एक (दूसरा) नहीं देख सकता और सब जहाँ-तहाँ पुकार रहे हैं॥46॥

चौपाई :

सकल मरमु रघुनायक जाना। लिए बोलि अंगद हनुमाना॥
समाचार सब कहि समुझाए। सुनत कोपि कपिकुंजर धाए॥1॥

श्री रघुनाथजी सब रहस्य जान गए। उन्होंने अंगद और हनुमान् को बुला लिया और सब समाचार कहकर समझाया। सुनते ही वे दोनों कपिश्रेष्ठ क्रोध करके दौड़े॥1॥

पुनि कृपाल हँसि चाप चढ़ावा। पावक सायक सपदि चलावा॥
भयउ प्रकास कतहुँ तम नाहीं। ग्यान उदयँ जिमि संसय जाहीं॥2॥

फिर कृपालु श्री रामजी ने हँसकर धनुष चलाया और तुरंत ही अग्निबाण चलाया, जिससे प्रकाश हो गया, कहीं अँधेरा नहीं रह गया। जैसे ज्ञान के उदय होने पर (सब प्रकार के) संदेह दूर हो जाते हैं॥2॥

भालु बलीमुख पाई प्रकासा। धाए हरष बिगत श्रम त्रासा॥
हनूमान अंगद रन गाजे। हाँक सुनत रजनीचर भाजे॥3॥
भालू और वानर प्रकाश पाकर श्रम और भय से रहित तथा प्रसन्न होकर दौड़े। हनुमान् और अंगद रण में गरज उठे। उनकी हाँक सुनते ही राक्षस भाग छूटे॥3॥

भागत भट पटकहिं धरि धरनी। करहिं भालु कपि अद्भुत करनी॥
गहि पद डारहिं सागर माहीं। मकर उरग झष धरि धरि खाहीं॥4॥
भागते हुए राक्षस योद्धाओं को वानर और भालू पकड़कर पृथ्वी पर दे मारते हैं और अद्भुत (आश्चर्यजनक) करनी करते हैं (युद्धकौशल दिखलाते हैं)। पैर पकड़कर उन्हें समुद्र में डाल देते हैं। वहाँ मगर, साँप और मच्छ उन्हें पकड़-पकड़कर खा डालते हैं॥4॥

दोहा :

कछु मारे कछु घायल कछु गढ़ चढ़े पराइ।
गर्जहिं भालु बलीमुख रिपु दल बल बिचलाइ॥47॥
कुछ मारे गए, कुछ घायल हुए, कुछ भागकर गढ़ पर चढ़ गए। अपने बल से शत्रुदल को विचलित करके रीछ और वानर (वीर) गरज रहे हैं॥47॥

चौपाई :

निसा जानि कपि चारिउ अनी। आए जहाँ कोसला धनी॥
राम कृपा करि चितवा सबही। भए बिगतश्रम बानर तबही॥1॥
रात हुई जानकर वानरों की चारों सेनाएँ (टुकड़ियाँ) वहाँ आईं, जहाँ कोसलपति श्री रामजी थे। श्री रामजी ने ज्यों ही सबको कृपा करके देखा त्यों ही ये वानर श्रमरहित हो गए॥1॥

उहाँ दसानन सचिव हँकारे। सब सन कहेसि सुभट जे मारे॥
आधा कटकु कपिन्ह संघारा। कहहु बेगि का करिअ बिचारा॥2॥
वहाँ (लंका में) रावण ने मंत्रियों को बुलाया और जो योद्धा मारे गए थे, उन सबको सबसे बताया। (उसने कहा-) वानरों ने आधी सेना का संहार कर दिया! अब शीघ्र बताओ, क्या विचार (उपाय) करना चाहिए?॥2॥

माल्यवंत अति जरठ निसाचर। रावन मातु पिता मंत्री बर॥
बोला बचन नीति अति पावन। सुनहु तात कछु मोर सिखावन॥3॥
माल्यवंत (नाम का एक) अत्यंत बूढा राक्षस था। वह रावण की माता का पिता (अर्थात् उसका नाना) और श्रेष्ठ मंत्री था। वह अत्यंत पवित्र नीति के वचन बोला- हे तात! कुछ मेरी सीख भी सुनो-॥3॥

जब ते तुम्ह सीता हरि आनी। असगुन होहिं न जाहिं बखानी॥
बेद पुरान जासु जसु गायो। राम बिमुख काहुँ न सुख पायो॥4॥

जब से तुम सीता को हर लाए हो, तब से इतने अपशकुन हो रहे हैं कि जो वर्णन नहीं किए जा सकते। वेद-पुराणों ने जिनका यश गाया है, उन श्री राम से विमुख होकर किसी ने सुख नहीं पाया॥4॥

दोहा :

हिरन्याच्छ भ्राता सहित मधु कैटभ बलवान।
जेहिं मारे सोइ अवतरेउ कृपासिंधु भगवान॥48 क॥

भाई हिरण्यकशिपु सहित हिरण्याक्ष को बलवान् मधु-कैटभ को जिन्होंने मारा था, वे ही कृपा के समुद्र भगवान् (रामरूप से) अवतरित हुए हैं॥ 48 (क)॥

मासपारायण, पचीसवाँ विश्राम

कालरूप खल बन दहन गुनागार घनबोध।
सिव बिरंचि जेहि सेवहिं तासों कवन बिरोध॥48 ख॥

जो कालस्वरूप हैं, दुष्टों के समूह रूपी वन के भस्म करने वाले (अग्नि) हैं, गुणों के धाम और ज्ञानघन हैं एवं शिवजी और ब्रह्माजी भी जिनकी सेवा करते हैं, उनसे वैर कैसा?॥48 (ख)॥

चौपाई :

परिहरि बयरु देहु बैदेही। भजहु कृपानिधि परम सनेही॥
ताके बचन बान सम लागे। करिआ मुँह करि जाहि अभागे॥1॥

(अतः) वैर छोड़कर उन्हें जानकीजी को दे दो और कृपानिधान परम स्नेही श्री रामजी का भजन करो। रावण को उसके वचन बाण के समान लगे। (वह बोला-) अरे अभागे! मुँह काला करके (यहाँ से) निकल जा॥1॥

बूढ़ भएसि न त मरतेउँ तोही। अब जनि नयन देखावसि मोही॥
तेहिं अपने मन अस अनुमाना। बध्यो चहत एहि कृपानिधाना॥2॥

तू बूढ़ा हो गया, नहीं तो तुझे मार ही डालता। अब मेरी आँखों को अपना मुँह न दिखला। रावण के ये वचन सुनकर उसने (माल्यवान् ने) अपने मन में ऐसा अनुमान किया कि इसे कृपानिधान श्री रामजी अब मारना ही चाहते हैं॥2॥

सो उठि गयउ कहत दुर्बादा। तब सकोप बोलेउ घननादा॥
कौतुक प्रात देखिअहु मोरा। करिहउँ बहुत कहौं का थोरा॥3॥

वह रावण को दुर्वचन कहता हुआ उठकर चला गया। तब मेघनाद क्रोधपूर्वक बोला- सबेरे मेरी करामात देखना। मैं बहुत कुछ करूँगा, थोड़ा क्या कहूँ? (जो कुछ वर्णन करूँगा थोड़ा ही होगा)॥ 3॥

सुनि सुत बचन भरोसा आवा। प्रीति समेत अंक बैठावा॥
करत बिचार भयउ भिनुसारा। लागे कपि पुनि चहूँ दुआरा॥4॥

पुत्र के वचन सुनकर रावण को भरोसा आ गया। उसने प्रेम के साथ उसे गोद में बैठा लिया। विचार करते-करते ही सबेरा हो गया। वानर फिर चारों दरवाजों पर जा लगे॥4॥

कोपि कपिन्ह दुर्घट गढ़ु घेरा। नगर कोलाहलु भयउ घनेरा॥
बिबिधायुध धर निसिचर धाए। गढ़ ते पर्बत सिखर ढहाए॥5॥

वानरों ने क्रोध करके दुर्गम किले को घेर लिया। नगर में बहुत ही कोलाहल (शोर) मच गया। राक्षस बहुत तरह के अस्त्र-शस्त्र धारण करके दौड़े और उन्होंने किले पर पहाड़ों के शिखर ढहाए॥ 5॥

छंद :

ढाहे महीधर सिखर कोटिन्ह बिबिध बिधि गोला चले।
घहरात जिमि पबिपात गर्जत जनु प्रलय के बादले॥
मर्कट बिकट भट जुटत कटत न लटत तन जर्जर भए।
गहि सैल तेहि गढ़ पर चलावहि जहँ सो तहँ निसिचर हए॥

उन्होंने पर्वतों के करोड़ों शिखर ढहाए, अनेक प्रकार से गोले चलने लगे। वे गोले ऐसा घहराते हैं जैसे वज्रपात हुआ हो (बिजली गिरी हो) और योद्धा ऐसे गरजते हैं, मानो प्रलयकाल के बादल हों। विकट वानर योद्धा भिड़ते हैं, कट जाते हैं (घायल हो जाते हैं), उनके शरीर जर्जर (चलनी) हो जाते हैं, तब भी वे लटते नहीं (हिम्मत नहीं हारते)। वे पहाड़ उठाकर उसे किले पर फेंकते हैं। राक्षस जहाँ के तहाँ (जो जहाँ होते हैं, वहीं) मारे जाते हैं।

दोहा :

मेघनाद सुनि श्रवन अस गढ़ पुनि छेंका आइ।
उतर्‌यो बीर दुर्ग तें सन्मुख चल्यो बजाइ॥49॥

मेघनाद ने कानों से ऐसा सुना कि वानरों ने आकर फिर किले को घेर लिया है। तब वह वीर किले से उतरा और डंका बजाकर उनके सामने चला॥49॥

चौपाई :

कहँ कोसलाधीस द्वौ भ्राता। धन्वी सकल लोत बिख्याता॥

कहँ नल नील दुबिद सुग्रीवा। अंगद हनूमंत बल सींवा॥1॥

(मेघनाद ने पुकारकर कहा-) समस्त लोकों में प्रसिद्ध धनुर्धर कोसलाधीश दोनों भाई कहाँ हैं? नल, नील, द्विविद, सुग्रीव और बल की सीमा अंगद और हनुमान् कहाँ हैं?॥1॥

कहाँ बिभीषनु भ्रातादोही। आजु सबहि हठि मारउँ ओही॥
अस कहि कठिन बान संधाने। अतिसय क्रोध श्रवन लगि ताने॥2॥

भाई से द्रोह करने वाला विभीषण कहाँ है? आज मैं सबको और उस दुष्ट को तो हठपूर्वक (अवश्य ही) मारूँगा। ऐसा कहकर उसने धनुष पर कठिन बाणों का सन्धान किया और अत्यंत क्रोध करके उसे कान तक खींचा॥2॥

सर समूह सो छाड़ै लागा। जनु सपच्छ धावहिं बहु नागा॥
जहँ तहँ परत देखिअहिं बानर। सन्मुख होइ न सके तेहि अवसर॥3॥

वह बाणों के समूह छोड़ने लगा। मानो बहुत से पंखवाले साँप दौड़े जा रहे हों। जहाँ-तहाँ वानर गिरते दिखाई पड़ने लगे। उस समय कोई भी उसके सामने न हो सके॥3॥

जहँ तहँ भागि चले कपि रीछा। बिसरी सबहि जुद्ध कै ईछा॥
सो कपि भालु न रन महँ देखा। कीन्हेसि जेहि न प्रान अवसेषा॥4॥

रीछ-वानर जहाँ-तहाँ भाग चले। सबको युद्ध की इच्छा भूल गई। रणभूमि में ऐसा एक भी वानर या भालू नहीं दिखाई पड़ा, जिसको उसने प्राणमात्र अवशेष न कर दिया हो (अर्थात् जिसके केवल प्राणमात्र ही न बचे हों, बल, पुरुषार्थ सारा जाता न रहा हो)॥4॥

दोहा :

दस दस सर सब मारेसि परे भूमि कपि बीर।
सिंहनाद करि गर्जा मेघनाद बल धीर॥50॥

फिर उसने सबको दस-दस बाण मारे, वानर वीर पृथ्वी पर गिर पड़े। बलवान् और धीर मेघनाद सिंह के समान नाद करके गरजने लगा॥50॥

चौपाई :

देखि पवनसुत कटक बिहाला। क्रोधवंत जनु धायउ काला॥
महासैल एक तुरत उपारा। अति रिस मेघनाद पर डारा॥1॥

सारी सेना को बेहाल (व्याकुल) देखकर पवनसुत हनुमान् क्रोध करके ऐसे दौड़े मानो स्वयं काल दौड़ आता हो। उन्होंने तुरंत एक बड़ा भारी पहाड़ उखाड़ लिया और बड़े ही क्रोध के साथ उसे मेघनाद पर छोड़ा॥1॥

आवत देखि गयउ नभ सोई। रथ सारथी तुरग सब खोई॥

बार बार पचार हनुमाना। निकट न आव मरमु सो जाना॥2॥

पहाड़ों को आते देखकर वह आकाश में उड़ गया। (उसके) रथ, सारथी और घोड़े सब नष्ट हो गए (चूर-चूर हो गए) हनुमान्‌जी उसे बार-बार ललकारते हैं। पर वह निकट नहीं आता, क्योंकि वह उनके बल का मर्म जानता था॥2॥

रघुपति निकट गयउ घननादा। नाना भाँति करेसि दुर्बादा॥
अस्त्र सस्त्र आयुध सब डारे। कौतुकहीं प्रभु काटि निवारे॥3॥

(तब) मेघनाद श्री रघुनाथजी के पास गया और उसने (उनके प्रति) अनेकों प्रकार के दुर्वचनों का प्रयोग किया। (फिर) उसने उन पर अस्त्र-शस्त्र तथा और सब हथियार चलाए। प्रभु ने खेल में ही सबको काटकर अलग कर दिया॥3॥

देखि प्रताप मूढ़ खिसिआना। करै लाग माया बिधि नाना॥
जिमि कोउ करै गरुड़ सैं खेला। डरपावै गहि स्वल्प सपेला॥4॥

श्री रामजी का प्रताप (सामर्थ्य) देखकर वह मूर्ख लज्जित हो गया और अनेकों प्रकार की माया करने लगा। जैसे कोई व्यक्ति छोटा सा साँप का बच्चा हाथ में लेकर गरुड़ को डरावे और उससे खेल करे॥4॥

दोहा :

जासु प्रबल माया बस सिव बिरंचि बड़ छोट।
ताहि दिखावइ निसिचर निज माया मति खोट॥51॥

शिवजी और ब्रह्माजी तक बड़े-छोटे (सभी) जिनकी अत्यंत बलवान् माया के वश में हैं, नीच बुद्धि निशाचर उनको अपनी माया दिखलाता है॥51॥

चौपाई : :

नभ चढ़ि बरष बिपुल अंगारा। महि ते प्रगट होहिं जलधारा॥
नाना भाँति पिसाच पिसाची। मारु काटु धुनि बोलहिं नाची॥1॥

आकाश में (ऊँचे) चढ़कर वह बहुत से अंगारे बरसाने लगा। पृथ्वी से जल की धाराएँ प्रकट होने लगीं। अनेक प्रकार के पिशाच तथा पिशाचिनियाँ नाच-नाचकर 'मारो, काटो' की आवाज करने लगीं॥1॥

बिष्टा पूय रुधिर कच हाड़ा। बरषइ कबहुँ उपल बहु छाड़ा॥
बरषि धूरि कीन्हेसि अँधिआरा। सूझ न आपन हाथ पसारा॥2॥

वह कभी तो विष्टा, पीब, खून, बाल और हड्डियाँ बरसाता था और कभी बहुत से पत्थर फेंक देता था। फिर उसने धूल बरसाकर ऐसा अँधेरा कर दिया कि अपना ही पसारा हुआ हाथ नहीं

सूझता था॥2॥

कपि अकुलाने माया देखें। सब कर मरन बना ऐहि लेखें॥
कौतुक देखि राम मुसुकाने। भए सभीत सकल कपि जाने॥3॥

माया देखकर वानर अकुला उठे। वे सोचने लगे कि इस हिसाब से (इसी तरह रहा) तो सबका मरण आ बना। यह कौतुक देखकर श्री रामजी मुस्कुराए। उन्होंने जान लिया कि सब वानर भयभीत हो गए हैं॥3॥

एक बान काटी सब माया। जिमि दिनकर हर तिमिर निकाया॥
कृपादृष्टि कपि भालु बिलोके। भए प्रबल रन रहहिं न रोके॥4॥

तब श्री रामजी ने एक ही बाण से सारी माया काट डाली, जैसे सूर्य अंधकार के समूह को हर लेता है। तदनन्तर उन्होंने कृपाभरी दृष्टि से वानर-भालुओं की ओर देखा, (जिससे) वे ऐसे प्रबल हो गए कि रण में रोकने पर भी नहीं रुकते थे॥4॥

दोहा :

आयसु मागि राम पहिं अंगदादि कपि साथ।
लछिमन चले क्रुद्ध होइ बान सरासन हाथ॥52॥

श्री रामजी से आज्ञा माँगकर, अंगद आदि वानरों के साथ हाथों में धनुष-बाण लिए हुए श्री लक्ष्मणजी क्रुद्ध होकर चले॥।52॥

चौपाई :

छतज नयन उर बाहु बिसाला। हिमगिरि निभ तनु कछु एक लाला॥
इहाँ दसानन सुभट पठाए। नाना अस्त्र सस्त्र गहि धाए॥1॥

उनके लाल नेत्र हैं, चौड़ी छाती और विशाल भुजाएँ हैं। हिमाचल पर्वत के समान उज्ज्वल (गौरवर्ण) शरीर कुछ ललाई लिए हुए है। इधर रावण ने भी बड़े-बड़े योद्धा भेजे, जो अनेकों अस्त्र-शस्त्र लेकर दौड़े॥1॥

भूधर नख बिटपायुध धारी। धाए कपि जय राम पुकारी॥
भिरे सकल जोरिहि सन जोरी। इत उत जय इच्छा नहिं थोरी॥2॥

पर्वत, नख और वृक्ष रूपी हथियार धारण किए हुए वानर 'श्री रामचंद्रजी की जय' पुकारकर दौड़े। वानर और राक्षस सब जोड़ी से जोड़ी भिड़ गए। इधर और उधर दोनों ओर जय की इच्छा कम न थी (अर्थात् प्रबल थी)॥2॥

मुठिकन्ह लातन्ह दातन्ह काटहिं। कपि जयसील मारि पुनि डाटहिं॥
मारु मारु धरु धरु धरु मारू। सीस तोरि गहि भुजा उपारू॥3॥

वानर उनको घूँसों और लातों से मारते हैं, दाँतों से काटते हैं। विजयशील वानर उन्हें मारकर फिर डाँटते भी हैं। 'मारो, मारो, पकड़ो, पकड़ो, पकड़कर मार दो, सिर तोड़ दो और भुजाऐं पकड़कर उखाड़ लो'॥3॥

असि रव पूरि रही नव खंडा। धावहिं जहँ तहँ रुंड प्रचंडा॥
देखहिं कौतुक नभ सुर बृंदा। कबहुँक बिसमय कबहुँ अनंदा॥4॥
नवों खंडों में ऐसी आवाज भर रही है। प्रचण्ड रुण्ड (धड़) जहाँ-तहाँ दौड़ रहे हैं। आकाश में देवतागण यह कौतुक देख रहे हैं। उन्हें कभी खेद होता है और कभी आनंद॥4॥

दोहा :

रुधिर गाड़ भरि भरि जम्यो ऊपर धूरि उड़ाइ।
जनु अँगार रासिन्ह पर मृतक धूम रह्यो छाइ॥53॥
खून गड्ढों में भर-भरकर जम गया है और उस पर धूल उड़कर पड़ रही है (वह दृश्य ऐसा है) मानो अंगारों के ढेरों पर राख छा रही हो॥53॥

चौपाई :

घायल बीर बिराजहिं कैसे। कुसुमति किंसुक के तरु जैसे॥
लछिमन मेघनाद द्वौ जोधा। भिरहिं परसपर करि अति क्रोधा॥1॥
घायल वीर कैसे शोभित हैं, जैसे फूले हुए पलास के पेड़। लक्ष्मण और मेघनाद दोनों योद्धा अत्यंत क्रोध करके एक-दूसरे से भिड़ते हैं॥1॥

एकहि एक सकइ नहिं जीती। निसिचर छल बल करइ अनीती॥
क्रोधवंत तब भयउ अनंता। भंजेउ रथ सारथी तुरंता॥2॥
एक-दूसरे को (कोई किसी को) जीत नहीं सकता। राक्षस छल-बल (माया) और अनीति (अधर्म) करता है, तब भगवान् अनन्तजी (लक्ष्मणजी) क्रोधित हुए और उन्होंने तुरंत उसके रथ को तोड़ डाला और सारथी को टुकड़े-टुकड़े कर दिया!॥2॥

नाना बिधि प्रहार कर सेषा। राच्छस भयउ प्रान अवसेषा॥
रावन सुत निज मन अनुमाना। संकठ भयउ हरिहि मम प्राना॥3॥
शेषजी (लक्ष्मणजी) उस पर अनेक प्रकार से प्रहार करने लगे। राक्षस के प्राणमात्र शेष रह गए। रावणपुत्र मेघनाद ने मन में अनुमान किया कि अब तो प्राण संकट आ बना, ये मेरे प्राण हर लेंगे॥3॥

बीरघातिनी छाड़िसि साँगी। तेजपुंज लछिमन उर लागी॥
मुरुछा भई सक्ति के लागें। तब चलि गयउ निकट भय त्यागें॥4॥

तब उसने वीरघातिनी शक्ति चलाई। वह तेजपूर्ण शक्ति लक्ष्मणजी की छाती में लगी। शक्ति लगने से उन्हें मूर्छा आ गई। तब मेघनाद भय छोड़कर उनके पास चला गया॥4॥

दोहा :

मेघनाद सम कोटि सत जोधा रहे उठाइ।
जगदाधार सेष किमि उठै चले खिसिआइ॥54॥

मेघनाद के समान सौ करोड़ (अगणित) योद्धा उन्हें उठा रहे हैं, परन्तु जगत् के आधार श्री शेषजी (लक्ष्मणजी) उनसे कैसे उठते? तब वे लजाकर चले गए॥54॥

चौपाई :

सुनु गिरिजा क्रोधानल जासू। जारइ भुवन चारिदस आसू॥
सक संग्राम जीति को ताही। सेवहिं सुर नर अग जग जाही॥1॥

(शिवजी कहते हैं-) हे गिरिजे! सुनो, (प्रलयकाल में) जिन (शेषनाग) के क्रोध की अग्नि चौदहों भुवनों को तुरंत ही जला डालती है और देवता, मनुष्य तथा समस्त चराचर (जीव) जिनकी सेवा करते हैं, उनको संग्राम में कौन जीत सकता है?॥1॥

यह कौतूहल जानइ सोई। जा पर कृपा राम कै होई॥
संध्या भय फिरि द्वौ बाहनी। लगे सँभारन निज निज अनी॥2॥

इस लीला को वही जान सकता है, जिस पर श्री रामजी की कृपा हो। संध्या होने पर दोनों ओर की सेनाएँ लौट पड़ीं, सेनापति अपनी-अपनी सेनाएँ संभालने लगे॥2॥

व्यापक ब्रह्म अजित भुवनेस्वर। लछिमन कहाँ बूझ करुनाकर॥
तब लगि लै आयउ हनुमाना। अनुज देखि प्रभु अति दुख माना॥3॥

व्यापक, ब्रह्म, अजेय, संपूर्ण ब्रह्मांड के ईश्वर और करुणा की खान श्री रामचंद्रजी ने पूछा- लक्ष्मण कहाँ है? तब तक हनुमान् उन्हें ले आए। छोटे भाई को (इस दशा में) देखकर प्रभु ने बहुत ही दुःख माना॥3॥

जामवंत कह बैद सुषेना। लंकाँ रहइ को पठई लेना॥
धरि लघु रूप गयउ हनुमंता। आनेउ भवन समेत तुरंता॥4॥

जाम्बवान् ने कहा- लंका में सुषेण वैद्य रहता है, उसे लाने के लिए किसको भेजा जाए? हनुमान्‌जी छोटा रूप धरकर गए और सुषेण को उसके घर समेत तुरंत ही उठा लाए॥4॥

दोहा :

राम पदारबिंद सिर नायउ आइ सुषेन।
कहा नाम गिरि औषधी जाहु पवनसुत लेन ॥55॥

सुषेण ने आकर श्री रामजी के चरणारविन्दों में सिर नवाया। उसने पर्वत और औषध का नाम बताया, (और कहा कि) हे पवनपुत्र! औषधि लेने जाओ॥55॥

चौपाई :

राम चरन सरसिज उर राखी। चला प्रभंजनसुत बल भाषी॥
उहाँ दूत एक मरमु जनावा। रावनु कालनेमि गृह आवा॥1॥

श्री रामजी के चरणकमलों को हृदय में रखकर पवनपुत्र हनुमान्‌जी अपना बल बखानकर (अर्थात्‌ मैं अभी लिए आता हूँ, ऐसा कहकर) चले। उधर एक गुप्तचर ने रावण को इस रहस्य की खबर दी। तब रावण कालनेमि के घर आया॥1॥

दसमुख कहा मरमु तेहिं सुना। पुनि पुनि कालनेमि सिरु धुना॥
देखत तुम्हहि नगरु जेहिं जारा। तासु पंथ को रोकन पारा॥2॥

रावण ने उसको सारा मर्म (हाल) बतलाया। कालनेमि ने सुना और बार-बार सिर पीटा (खेद प्रकट किया)। (उसने कहा-) तुम्हारे देखते-देखते जिसने नगर जला डाला, उसका मार्ग कौन रोक सकता है?॥2॥

भजि रघुपति करु हित आपना। छाँड़हु नाथ मृषा जल्पना॥
नील कंज तनु सुंदर स्यामा। हृदयँ राखु लोचनाभिरामा॥3॥

श्री रघुनाथजी का भजन करके तुम अपना कल्याण करो! हे नाथ! झूठी बकवाद छोड़ दो। नेत्रों को आनंद देने वाले नीलकमल के समान सुंदर श्याम शरीर को अपने हृदय में रखो॥3॥

मैं तैं मोर मूढता त्यागू। महा मोह निसि सूतत जागू॥
काल ब्याल कर भच्छक जोई। सपनेहुँ समर कि जीतिअ सोई॥4॥

मैं-तू (भेद-भाव) और ममता रूपी मूढता को त्याग दो। महामोह (अज्ञान) रूपी रात्रि में सो रहे हो, सो जाग उठो, जो काल रूपी सर्प का भी भक्षक है, कहीं स्वप्न में भी वह रण में जीता जा सकता है?॥4॥

दोहा :

सुनि दसकंठ रिसान अति तेहिं मन कीन्ह बिचार।
राम दूत कर मरौं बरु यह खल रत मल भार॥56॥

उसकी ये बातें सुनकर रावण बहुत ही क्रोधित हुआ। तब कालनेमि ने मन में विचार किया कि (इसके हाथ से मरने की अपेक्षा) श्री रामजी के दूत के हाथ से ही मरूँ तो अच्छा है। यह दुष्ट तो पाप समूह में रत है॥56॥

चौपाई :

अस कहि चला रचिसि मग माया। सर मंदिर बर बाग बनाया॥
मारुतसुत देखा सुभ आश्रम। मुनिहि बूझि जल पियौं जाइ श्रम॥1॥

वह मन ही मन ऐसा कहकर चला और उसने मार्ग में माया रची। तालाब, मंदिर और सुंदर बाग बनाया। हनुमान्‌जी ने सुंदर आश्रम देखकर सोचा कि मुनि से पूछकर जल पी लूँ, जिससे थकावट दूर हो जाए॥1॥

राच्छस कपट बेष तहँ सोहा। मायापति दूतहि चह मोहा॥
जाइ पवनसुत नायउ माथा। लाग सो कहै राम गुन गाथा॥2॥

राक्षस वहाँ कपट (से मुनि) का वेष बनाए विराजमान था। वह मूर्ख अपनी माया से मायापति के दूत को मोहित करना चाहता था। मारुति ने उसके पास जाकर मस्तक नवाया। वह श्री रामजी के गुणों की कथा कहने लगा॥2॥

होत महा रन रावन रामहिं। जितिहहिं राम न संसय या महिं॥
इहाँ भएँ मैं देखउँ भाई। ग्यान दृष्टि बल मोहि अधिकाई॥3॥

(वह बोला-) रावण और राम में महान् युद्ध हो रहा है। रामजी जीतेंगे, इसमें संदेह नहीं है। हे भाई! मैं यहाँ रहता हुआ ही सब देख रहा हूँ। मुझे ज्ञानदृष्टि का बहुत बड़ा बल है॥3॥

मागा जल तेहिं दीन्ह कमंडल। कह कपि नहिं अघाउँ थोरें जल॥
सर मज्जन करि आतुर आवहु। दिच्छा देउँ ग्यान जेहिं पावहु॥4॥

हनुमान्‌जी ने उससे जल माँगा, तो उसने कमण्डलु दे दिया। हनुमान्‌जी ने कहा- थोड़े जल से मैं तृप्त नहीं होने का। तब वह बोला- तालाब में स्नान करके तुरंत लौट आओ तो मैं तुम्हे दीक्षा दूँ, जिससे तुम ज्ञान प्राप्त करो॥4॥

दोहा :

सर पैठत कपि पद गहा मकरीं तब अकुलान।
मारी सो धरि दिब्य तनु चली गगन चढ़ि जान॥57॥

तालाब में प्रवेश करते ही एक मगरी ने अकुलाकर उसी समय हनुमान्‌जी का पैर पकड़ लिया। हनुमान्‌जी ने उसे मार डाला। तब वह दिव्य देह धारण करके विमान पर चढ़कर आकाश को चली॥57॥

चौपाई :

कपि तव दरस भइउँ निष्पापा। मिटा तात मुनिबर कर सापा॥
मुनि न होइ यह निसिचर घोरा। मानहु सत्य बचन कपि मोरा॥1॥

(उसने कहा-) हे वानर! मैं तुम्हारे दर्शन से पापरहित हो गई। हे तात! श्रेष्ठ मुनि का शाप मिट

गया। हे कपि! यह मुनि नहीं है, घोर निशाचर है। मेरा वचन सत्य मानो॥1॥

अस कहि गई अपछरा जबहीं। निसिचर निकट गयउ कपि तबहीं॥
कह कपि मुनि गुरदछिना लेहू। पाछें हमहिं मंत्र तुम्ह देहू॥2॥

ऐसा कहकर ज्यों ही वह अप्सरा गई, त्यों ही हनुमान्‌जी निशाचर के पास गए। हनुमान्‌जी ने कहा- हे मुनि! पहले गुरुदक्षिणा ले लीजिए। पीछे आप मुझे मंत्र दीजिएगा॥2॥

सिर लंगूर लपेटि पछारा। निज तनु प्रगटेसि मरती बारा॥
राम राम कहि छाड़ेसि प्राना। सुनि मन हरषि चलेउ हनुमाना॥3॥

हनुमान्‌जी ने उसके सिर को पूँछ में लपेटकर उसे पछाड़ दिया। मरते समय उसने अपना (राक्षसी) शरीर प्रकट किया। उसने राम-राम कहकर प्राण छोड़े। यह (उसके मुँह से राम-राम का उच्चारण) सुनकर हनुमान्‌जी मन में हर्षित होकर चले॥3॥

देखा सैल न औषध चीन्हा। सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा॥
गहि गिरि निसि नभ धावक भयऊ। अवधपुरी ऊपर कपि गयऊ॥4॥

उन्होंने पर्वत को देखा, पर औषध न पहचान सके। तब हनुमान्‌जी ने एकदम से पर्वत को ही उखाड़ लिया। पर्वत लेकर हनुमान्‌जी रात ही में आकाश मार्ग से दौड़ चले और अयोध्यापुरी के ऊपर पहुँच गए॥4॥

दोहा :

देखा भरत बिसाल अति निसिचर मन अनुमानि।
बिनु फर सायक मारेउ चाप श्रवन लगि तानि॥58॥

भरतजी ने आकाश में अत्यंत विशाल स्वरूप देखा, तब मन में अनुमान किया कि यह कोई राक्षस है। उन्होंने कान तक धनुष को खींचकर बिना फल का एक बाण मारा॥58॥

चौपाई :

परेउ मुरुछि महि लागत सायक। सुमिरत राम राम रघुनायक॥
सुनि प्रिय बचन भरत तब धाए। कपि समीप अति आतुर आए॥1॥

बाण लगते ही हनुमान्‌जी 'राम, राम, रघुपति' का उच्चारण करते हुए मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। प्रिय वचन (रामनाम) सुनकर भरतजी उठकर दौड़े और बड़ी उतावली से हनुमान्‌जी के पास आए॥1॥

बिकल बिलोकि कीस उर लावा। जागत नहिं बहु भाँति जगावा॥
मुख मलीन मन भए दुखारी। कहत बचन भरि लोचन बारी॥2॥

हनुमान्‌जी को व्याकुल देखकर उन्होंने हृदय से लगा लिया। बहुत तरह से जगाया, पर वे जागते

न थे! तब भरतजी का मुख उदास हो गया। वे मन में बड़े दुःखी हुए और नेत्रों में (विषाद के आँसुओं का) जल भरकर ये वचन बोले-॥2॥

जेहिं बिधि राम बिमुख मोहि कीन्हा। तेहिं पुनि यह दारुन दुख दीन्हा॥
जौं मोरें मन बच अरु काया॥ प्रीति राम पद कमल अमाया॥3॥

जिस विधाता ने मुझे श्री राम से विमुख किया, उसी ने फिर यह भयानक दुःख भी दिया। यदि मन, वचन और शरीर से श्री रामजी के चरणकमलों में मेरा निष्कपट प्रेम हो,॥3॥

तौ कपि होउ बिगत श्रम सूला। जौं मो पर रघुपति अनुकूला॥
सुनत बचन उठि बैठ कपीसा। कहि जय जयति कोसलाधीसा॥4॥

और यदि श्री रघुनाथजी मुझ पर प्रसन्न हों तो यह वानर थकावट और पीड़ा से रहित हो जाए। यह वचन सुनते ही कपिराज हनुमान्‌जी 'कोसलपति श्री रामचंद्रजी की जय हो, जय हो' कहते हुए उठ बैठे॥4॥

सोरठा :

लीन्ह कपिहि उर लाइ पुलकित तनु लोचन सजल।
प्रीति न हृदय समाइ सुमिरि राम रघुकुल तिलक॥59॥

भरतजी ने वानर (हनुमान्‌जी) को हृदय से लगा लिया, उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों में (आनंद तथा प्रेम के आँसुओं का) जल भर आया। रघुकुलतिलक श्री रामचंद्रजी का स्मरण करके भरतजी के हृदय में प्रीति समाती न थी॥59॥

चौपाई :

तात कुसल कहु सुखनिधान की। सहित अनुज अरु मातु जानकी॥
लकपि सब चरित समास बखाने। भए दुखी मन महुँ पछिताने॥1॥

(भरतजी बोले-) हे तात! छोटे भाई लक्ष्मण तथा माता जानकी सहित सुखनिधान श्री रामजी की कुशल कहो। वानर (हनुमान्‌जी) ने संक्षेप में सब कथा कही। सुनकर भरतजी दुःखी हुए और मन में पछताने लगे॥1॥

अहह दैव मैं कत जग जायउँ। प्रभु के एकहु काज न आयउँ॥
जानि कुअवसरु मन धरि धीरा। पुनि कपि सन बोले बलबीरा॥2॥

हा दैव! मैं जगत् में क्यों जन्मा? प्रभु के एक भी काम न आया। फिर कुअवसर (विपरीत समय) जानकर मन में धीरज धरकर बलवीर भरतजी हनुमान्‌जी से बोले-॥2॥

तात गहरु होइहि तोहि जाता। काजु नसाइहि होत प्रभाता॥
चढ़ु मम सायक सैल समेता। पठवौं तोहि जहँ कृपानिकेता॥3॥

हे तात! तुमको जाने में देर होगी और सबेरा होते ही काम बिगड़ जाएगा। (अतः) तुम पर्वत सहित मेरे बाण पर चढ़ जाओ, मैं तुमको वहाँ भेज दूँ जहाँ कृपा के धाम श्री रामजी हैं॥3॥

सुनि कपि मन उपजा अभिमाना। मोरें भार चलिहि किमि बाना॥
राम प्रभाव बिचारि बहोरी। बंदि चरन कह कपि कर जोरी॥4॥

भरतजी की यह बात सुनकर (एक बार तो) हनुमान्‌जी के मन में अभिमान उत्पन्न हुआ कि मेरे बोझ से बाण कैसे चलेगा? (किन्तु) फिर श्री रामचंद्रजी के प्रभाव का विचार करके वे भरतजी के चरणों की वंदना करके हाथ जोड़कर बोले-॥4॥

दोहा :

तव प्रताप उर राखि प्रभु जैहउँ नाथ तुरंत।
अस कहि आयसु पाइ पद बंदि चलेउ हनुमंत॥60 क॥

हे नाथ! हे प्रभो! मैं आपका प्रताप हृदय में रखकर तुरंत चला जाऊँगा। ऐसा कहकर आज्ञा पाकर और भरतजी के चरणों की वंदना करके हनुमान्‌जी चले॥60 (क)॥

भरत बाहु बल सील गुन प्रभु पद प्रीति अपार।
मन महुँ जात सराहत पुनि पुनि पवनकुमार॥60 ख॥

भरतजी के बाहुबल, शील (सुंदर स्वभाव), गुण और प्रभु के चरणों में अपार प्रेम की मन ही मन बारंबार सराहना करते हुए मारुति श्री हनुमान्‌जी चले जा रहे हैं॥60 (ख)॥

चौपाई :

उहाँ राम लछिमनहि निहारी। बोले बचन मनुज अनुसारी॥
अर्ध राति गइ कपि नहिं आयउ। राम उठाइ अनुज उर लायउ॥1॥

वहाँ लक्ष्मणजी को देखकर श्री रामजी साधारण मनुष्यों के अनुसार (समान) वचन बोले- आधी रात बीत चुकी है, हनुमान् नहीं आए। यह कहकर श्री रामजी ने छोटे भाई लक्ष्मणजी को उठाकर हृदय से लगा लिया॥1॥

सकहु न दुखित देखि मोहि काउ। बंधु सदा तव मृदुल सुभाऊ॥
मम हित लागि तजेहु पितु माता। सहेहु बिपिन हिम आतप बाता॥2॥

(और बोले-) हे भाई! तुम मुझे कभी दुःखी नहीं देख सकते थे। तुम्हारा स्वभाव सदा से ही कोमल था। मेरे हित के लिए तुमने माता-पिता को भी छोड़ दिया और वन में जाड़ा, गरमी और हवा सब सहन किया॥2॥

सो अनुराग कहाँ अब भाई। उठहु न सुनि मम बच बिकलाई॥
जौं जनतेउँ बन बंधु बिछोहू। पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू॥3॥

हे भाई! वह प्रेम अब कहाँ है? मेरे व्याकुलतापूर्वक वचन सुनकर उठते क्यों नहीं? यदि मैं जानता कि वन में भाई का विछोह होगा तो मैं पिता का वचन (जिसका मानना मेरे लिए परम कर्तव्य था) उसे भी न मानता॥3॥

सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥
अस बिचारि जियँ जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता॥4॥

पुत्र, धन, स्त्री, घर और परिवार- ये जगत् में बार-बार होते और जाते हैं, परन्तु जगत् में सहोदर भाई बार-बार नहीं मिलता। हृदय में ऐसा विचार कर हे तात! जागो॥4॥

जथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिबर कर हीना॥
अस मम जिवन बंधु बिनु तोही। जौं जड़ दैव जिआवै मोही॥5॥

जैसे पंख बिना पक्षी, मणि बिना सर्प और सूँड़ बिना श्रेष्ठ हाथी अत्यंत दीन हो जाते हैं, हे भाई! यदि कहीं जड़ दैव मुझे जीवित रखे तो तुम्हारे बिना मेरा जीवन भी ऐसा ही होगा॥5॥

जैहउँ अवध कौन मुहु लाई। नारि हेतु प्रिय भाई गँवाई॥
बरु अपजस सहतेउँ जग माहीं। नारि हानि बिसेष छति नाहीं॥6॥

स्त्री के लिए प्यारे भाई को खोकर, मैं कौन सा मुँह लेकर अवध जाऊँगा? मैं जगत् में बदनामी भले ही सह लेता (कि राम में कुछ भी वीरता नहीं है जो स्त्री को खो बैठे)। स्त्री की हानि से (इस हानि को देखते) कोई विशेष क्षति नहीं थी॥6॥

अब अपलोकु सोकु सुत तोरा। सहिहि निठुर कठोर उर मोरा॥
निज जननी के एक कुमारा। तात तासु तुम्ह प्रान अधारा॥7॥

अब तो हे पुत्र! मेरे निष्ठुर और कठोर हृदय यह अपयश और तुम्हारा शोक दोनों ही सहन करेगा। हे तात! तुम अपनी माता के एक ही पुत्र और उसके प्राणाधार हो॥7॥

सौंपेसि मोहि तुम्हहि गहि पानी। सब बिधि सुखद परम हित जानी॥
उतरु काह दैहउँ तेहि जाई। उठि किन मोहि सिखावहु भाई॥8॥

सब प्रकार से सुख देने वाला और परम हितकारी जानकर उन्होंने तुम्हें हाथ पकड़कर मुझे सौंपा था। मैं अब जाकर उन्हें क्या उत्तर दूँगा? हे भाई! तुम उठकर मुझे सिखाते (समझाते) क्यों नहीं?॥8॥

बहु बिधि सोचत सोच बिमोचन। स्रवत सलिल राजिव दल लोचन॥
उमा एक अखंड रघुराई। नर गति भगत कृपाल देखाई॥9॥

सोच से छुड़ाने वाले श्री रामजी बहुत प्रकार से सोच कर रहे हैं। उनके कमल की पंखुड़ी के समान नेत्रों से (विषाद के आँसुओं का) जल बह रहा है। (शिवजी कहते हैं-) हे उमा! श्री

रघुनाथजी एक (अद्वितीय) और अखंड (वियोगरहित) हैं। भक्तों पर कृपा करने वाले भगवान् ने (लीला करके) मनुष्य की दशा दिखलाई है॥9॥

सोरठा :

प्रभु प्रलाप सुनि कान बिकल भए बानर निकर।
आइ गयउ हनुमान जिमि करुना महँ बीर रस॥61॥

प्रभु के (लीला के लिए किए गए) प्रलाप को कानों से सुनकर वानरों के समूह व्याकुल हो गए। (इतने में ही) हनुमान्‌जी आ गए, जैसे करुणरस (के प्रसंग) में वीर रस (का प्रसंग) आ गया हो॥61॥

चौपाई :

हरषि राम भेंटेउ हनुमाना। अति कृतग्य प्रभु परम सुजाना॥
तुरत बैद तब कीन्ह उपाई। उठि बैठे लछिमन हरषाई॥1॥

श्री रामजी हर्षित होकर हनुमान्‌जी से गले मिले। प्रभु परम सुजान (चतुर) और अत्यंत ही कृतज्ञ हैं। तब वैद्य (सुषेण) ने तुरंत उपाय किया, (जिससे) लक्ष्मणजी हर्षित होकर उठ बैठे॥1॥

हृदयँ लाइ प्रभु भेंटेउ भ्राता। हरषे सकल भालु कपि ब्राता॥
कपि पुनि बैद तहाँ पहुँचावा। जेहि बिधि तबहिं ताहि लइ आवा॥2॥

प्रभु भाई को हृदय से लगाकर मिले। भालू और वानरों के समूह सब हर्षित हो गए। फिर हनुमान्‌जी ने वैद्य को उसी प्रकार वहाँ पहुँचा दिया, जिस प्रकार वे उस बार (पहले) उसे ले आए थे॥2॥

चौपाई :

यह बृत्तांत दसानन सुनेऊ। अति बिषाद पुनि पुनि सिर धुनेऊ॥
ब्याकुल कुंभकरन पहिं आवा। बिबिध जतन करि ताहि जगावा॥3॥

यह समाचार जब रावण ने सुना, तब उसने अत्यंत विषाद से बार-बार सिर पीटा। वह व्याकुल होकर कुंभकर्ण के पास गया और बहुत से उपाय करके उसने उसको जगाया॥3॥

जागा निसिचर देखिअ कैसा। मानहुँ कालु देह धरि बैसा॥
कुंभकरन बूझा कहु भाई। काहे तव मुख रहे सुखाई॥4॥

कुंभकर्ण जगा (उठ बैठा) वह कैसा दिखाई देता है मानो स्वयं काल ही शरीर धारण करके बैठा हो। कुंभकर्ण ने पूछा- हे भाई! कहो तो, तुम्हारे मुख सूख क्यों रहे हैं?॥4॥

कथा कही सब तेहिं अभिमानी। जेहि प्रकार सीता हरि आनी॥
तात कपिन्ह सब निसिचर मारे। महा महा जोधा संघारे॥5॥

उस अभिमानी (रावण) ने उससे जिस प्रकार से वह सीता को हर लाया था (तब से अब तक की) सारी कथा कही। (फिर कहा-) हे तात! वानरों ने सब राक्षस मार डाले। बड़े-बड़े योद्धाओं का भी संहार कर डाला॥5॥

दुर्मुख सुररिपु मनुज अहारी। भट अतिकाय अकंपन भारी॥
अपर महोदर आदिक बीरा। परे समर महि सब रनधीरा॥6॥

दुर्मुख, देवशत्रु (देवान्तक), मनुष्य भक्षक (नरान्तक), भारी योद्धा अतिकाय और अकम्पन तथा महोदर आदि दूसरे सभी रणधीर वीर रणभूमि में मारे गए॥6॥

दोहा :

सुनि दसकंधर बचन तब कुंभकरन बिलखान।
जगदंबा हरि आनि अब सठ चाहत कल्यान॥62॥

तब रावण के वचन सुनकर कुंभकर्ण बिलखकर (दुःखी होकर) बोला- अरे मूर्ख! जगज्जननी जानकी को हर लाकर अब कल्याण चाहता है?॥62॥

चौपाई :

भल न कीन्ह तैं निसिचर नाहा। अब मोहि आइ जगाएहि काहा॥
अजहूँ तात त्यागि अभिमाना। भजहु राम होइहि कल्याना॥1॥

हे राक्षसराज! तूने अच्छा नहीं किया। अब आकर मुझे क्यों जगाया? हे तात! अब भी अभिमान छोड़कर श्री रामजी को भजो तो कल्याण होगा॥1॥

हैं दससीस मनुज रघुनायक। जाके हनूमान से पायक॥
अहह बंधु तैं कीन्हि खोटाई। प्रथमहिं मोहि न सुनाएहि आई॥2॥

हे रावण! जिनके हनुमान् सरीखे सेवक हैं, वे श्री रघुनाथजी क्या मनुष्य हैं? हाय भाई! तूने बुरा किया, जो पहले ही आकर मुझे यह हाल नहीं सुनाया॥2॥

कीन्हेहु प्रभु बिरोध तेहि देवक। सिव बिरंचि सुर जाके सेवक॥
नारद मुनि मोहि ग्यान जो कहा। कहतेउँ तोहि समय निरबाहा॥3॥

हे स्वामी! तुमने उस परम देवता का विरोध किया, जिसके शिव, ब्रह्मा आदि देवता सेवक हैं। नारद मुनि ने मुझे जो ज्ञान कहा था, वह मैं तुझसे कहता, पर अब तो समय जाता रहा॥3॥

अब भरि अंक भेंटु मोहि भाई। लोचन सुफल करौं मैं जाई॥
स्याम गात सरसीरुह लोचन। देखौं जाइ ताप त्रय मोचन॥4॥

हे भाई! अब तो (अन्तिम बार) अँकवार भरकर मुझसे मिल ले। मैं जाकर अपने नेत्र सफल करूँ। तीनों तापों को छुड़ाने वाले श्याम शरीर, कमल नेत्र श्री रामजी के जाकर दर्शन करूँ॥4॥

दोहा :

राम रूप गुन सुमिरत मगन भयउ छन एक।
रावन मागेउ कोटि घट मद अरु महिष अनेक॥63॥

श्री रामचंद्रजी के रूप और गुणों को स्मरण करके वह एक क्षण के लिए प्रेम में मग्न हो गया। फिर रावण से करोड़ों घड़े मदिरा और अनेकों भैंसे मँगवाए॥63॥

चौपाई :

महिषखाइ करि मदिरा पाना। गर्जा बज्राघात समाना॥
कुंभकरन दुर्मद रन रंगा। चला दुर्ग तजि सेन न संगा॥1॥

भैंसे खाकर और मदिरा पीकर वह वज्रघात (बिजली गिरने) के समान गरजा। मद से चूर रण के उत्साह से पूर्ण कुंभकर्ण किला छोड़कर चला। सेना भी साथ नहीं ली॥1॥

देखि बिभीषनु आगें आयउ। परेउ चरन निज नाम सुनायउ॥
अनुज उठाइ हृदयँ तेहि लायो। रघुपति भक्त जानि मन भायो॥2॥

उसे देखकर विभीषण आगे आए और उसके चरणों पर गिरकर अपना नाम सुनाया। छोटे भाई को उठाकर उसने हृदय से लगा लिया और श्री रघुनाथजी का भक्त जानकर वे उसके मन को प्रिय लगे॥2॥

तात लात रावन मोहि मारा। कहत परम हित मंत्र बिचारा॥
तेहिं गलानि रघुपति पहिं आयउँ। देखि दीन प्रभु के मन भायउँ॥3॥

(विभीषण ने कहा-) हे तात! परम हितकर सलाह एवं विचार करने पर रावण ने मुझे लात मारी। उसी ग्लानि के मारे मैं श्री रघुनाथजी के पास चला आया। दीन देखकर प्रभु के मन को मैं (बहुत) प्रिय लगा॥3॥

सुनु भयउ कालबस रावन। सो कि मान अब परम सिखावन॥
धन्य धन्य तैं धन्य विभीषन। भयहु तात निसिचर कुल भूषन॥4॥

(कुंभकर्ण ने कहा-) हे पुत्र! सुन, रावण तो काल के वश हो गया है (उसके सिर पर मृत्यु नाच रही है)। वह क्या अब उत्तम शिक्षा मान सकता है? हे विभीषण! तू धन्य है, धन्य है। हे तात! तू राक्षस कुल का भूषण हो गया॥4॥

बंधु बंस तैं कीन्ह उजागर। भजेहु राम सोभा सुख सागर॥5॥

हे भाई! तूने अपने कुल को दैदीप्यमान कर दिया, जो शोभा और सुख के समुद्र श्री रामजी को भजा॥5॥

दोहा :

बचन कर्म मन कपट तजि भजेहु राम रनधीर।
जाहु न निज पर सूझ मोहि भयउँ कालबस बीर॥64॥

मन, वचन और कर्म से कपट छोड़कर रणधीर श्री रामजी का भजन करना। हे भाई! मैं काल (मृत्यु) के वश हो गया हूँ, मुझे अपना-पराया नहीं सूझता, इसलिए अब तुम जाओ॥64॥

चौपाई :

बंधु बचन सुनि चला बिभीषन। आयउ जहँ त्रैलोक बिभूषन॥
नाथ भूधराकार सरीरा। कुंभकरन आवत रनधीरा॥1॥

भाई के वचन सुनकर विभीषण लौट गए और वहाँ आए, जहाँ त्रिलोकी के भूषण श्री रामजी थे। (विभीषण ने कहा-) हे नाथ! पर्वत के समान (विशाल) देह वाला रणधीर कुंभकर्ण आ रहा है॥1॥

एतना कपिन्ह सुना जब काना। किलकिलाइ धाए बलवाना॥
लिए उठाइ बिटप अरु भूधर। कटकटाइ डारहिं ता ऊपर॥2॥

वानरों ने जब कानों से इतना सुना, तब वे बलवान् किलकिलाकर (हर्षध्वनि करके) दौड़े। वृक्ष और पर्वत (उखाड़कर) उठा लिए और (क्रोध से) दाँत कटकटाकर उन्हें उसके ऊपर डालने लगे॥2॥

कोटि कोटि गिरि सिखर प्रहारा। करहिं भालु कपि एक एक बारा॥
मुर्‌यो न मनु तनु टर्‌यो न टार्‌यो। जिमि गज अर्क फलनि को मार्‌यो॥3॥

रीछ-वानर एक-एक बार में ही करोड़ों पहाड़ों के शिखरों से उस पर प्रहार करते हैं, परन्तु इससे न तो उसका मन ही मुड़ा (विचलित हुआ) और न शरीर ही टाले टला, जैसे मदार के फलों की मार से हाथी पर कुछ भी असर नहीं होता!॥3॥

तब मारुतसुत मुठिका हन्यो। परयो धरनि ब्याकुल सिर धुन्यो॥
पुनि उठि तेहिं मारेउ हनुमंता। घुर्मित भूतल परेउ तुरंता॥4॥

तब हनुमान्‌जी ने उसे एक घूँसा मारा, जिससे वह व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और सिर पीटने लगा। फिर उसने उठकर हनुमान्‌जी को मारा। वे चक्कर खाकर तुरंत ही पृथ्वी पर गिर पड़े॥4॥

पुनि नल नीलहि अवनि पछारेसि। जहँ तहँ पटकि पटकि भट डारेसि॥
चली बलीमुख सेन पराई। अति भय त्रसित न कोउ समुहाई॥5॥

फिर उसने नल-नील को पृथ्वी पर पछाड़ दिया और दूसरे योद्धाओं को भी जहाँ-तहाँ पटककर डाल दिया। वानर सेना भाग चली। सब अत्यंत भयभीत हो गए, कोई सामने नहीं आता॥5॥

दोहा :

अंगदादि कपि मुरुछित करि समेत सुग्रीव।
काँख दाबि कपिराज कहुँ चला अमित बल सींव॥65॥
सुग्रीव समेत अंगदादि वानरों को मूर्छित करके फिर वह अपरिमित बल की सीमा कुंभकर्ण वानरराज सुग्रीव को काँख में दाबकर चला॥65॥

चौपाई :

उमा करत रघुपति नरलीला। खेलत गरुड़ जिमि अहिगन मीला॥
भृकुटि भंग जो कालहि खाई। ताहि कि सोहइ ऐसि लराई॥1॥
(शिवजी कहते हैं-) हे उमा! श्री रघुनाथजी वैसे ही नरलीला कर रहे हैं, जैसे गरुड़ सर्पों के समूह में मिलकर खेलता हो। जो भौंह के इशारे मात्र से (बिना परिश्रम के) काल को भी खा जाता है, उसे कहीं ऐसी लड़ाई शोभा देती है?॥1॥

जग पावनि कीरति बिस्तरिहहिं। गाइ गाइ भवनिधि नर तरिहहिं॥
मुरुछा गइ मारुतसुत जागा। सुग्रीवहि तब खोजन लागा॥2॥
भगवान् (इसके द्वारा) जगत् को पवित्र करने वाली वह कीर्ति फैलाएँगे, जिसे गा-गाकर मनुष्य भवसागर से तर जाएँगे। मूर्च्छा जाती रही, तब मारुति हनुमान्‌जी जागे और फिर वे सुग्रीव को खोजने लगे॥2॥

सुग्रीवहु कै मुरुछा बीती। निबुकि गयउ तेहि मृतक प्रतीती॥
काटेसि दसन नासिका काना। गरजि अकास चलेउ तेहिं जाना॥3॥
सुग्रीव की भी मूर्च्छा दूर हुई, तब वे (मुर्दे से होकर) खिसक गए (काँख से नीचे गिर पड़े)। कुम्भकर्ण ने उनको मृतक जाना। उन्होंने कुम्भकर्ण के नाक-कान दाँतों से काट लिए और फिर गरज कर आकाश की ओर चले, तब कुम्भकर्ण ने जाना॥3॥

गहेउ चरन गहि भूमि पछारा। अति लाघवँ उठि पुनि तेहि मारा॥
पुनि आयउ प्रभु पहिं बलवाना। जयति जयति जय कृपानिधाना॥4॥
उसने सुग्रीव का पैर पकड़कर उनको पृथ्वी पर पछाड़ दिया। फिर सुग्रीव ने बड़ी फुर्ती से उठकर उसको मारा और तब बलवान् सुग्रीव प्रभु के पास आए और बोले- कृपानिधान प्रभु की जय हो, जय हो, जय हो॥4॥

नाक कान काटे जियँ जानी। फिरा क्रोध करि भइ मन ग्लानी॥
सहज भीम पुनि बिनु श्रुति नासा। देखत कपि दल उपजी त्रासा॥5॥
नाक-कान काटे गए, ऐसा मन में जानकर बड़ी ग्लानि हुई और वह क्रोध करके लौटा। एक तो वह स्वभाव (आकृति) से ही भयंकर था और फिर बिना नाक-कान का होने से और भी भयानक

हो गया। उसे देखते ही वानरों की सेना में भय उत्पन्न हो गया॥5॥

दोहा :

जय जय जय रघुबंस मनि धाए कपि दै हूह।
एकहि बार तासु पर छाड़ेन्हि गिरि तरु जूह॥66॥

'रघुवंशमणि की जय हो, जय हो' ऐसा पुकारकर वानर हूह करके दौड़े और सबने एक ही साथ उस पर पहाड़ और वृक्षों के समूह छोड़े॥66॥

चौपाई :

कुंभकरन रन रंग बिरुद्धा। सन्मुख चला काल जनु क्रुद्धा॥
कोटि कोटि कपि धरि धरि खाई। जनु टीड़ी गिरि गुहाँ समाई॥1॥

रण के उत्साह में कुंभकर्ण विरुद्ध होकर (उनके) सामने ऐसा चला मानो क्रोधित होकर काल ही आ रहा हो। वह करोड़-करोड़ वानरों को एक साथ पकड़कर खाने लगा! (वे उसके मुँह में इस तरह घुसने लगे) मानो पर्वत की गुफा में टिड्डियाँ समा रही हों॥1॥

कोटिन्ह गहि सरीर सन मर्दा। कोटिन्ह मीजि मिलव महि गर्दा॥
मुख नासा श्रवनन्हि कीं बाटा। निसरि पराहिं भालु कपि ठाटा॥2॥

करोड़ों (वानरों) को पकड़कर उसने शरीर से मसल डाला। करोड़ों को हाथों से मलकर पृथ्वी की धूल में मिला दिया। (पेट में गए हुए) भालू और वानरों के ठट्ट के ठट्ट उसके मुख, नाक और कानों की राह से निकल-निकलकर भाग रहे हैं॥2॥

रन मद मत्त निसाचर दर्पा। बिस्व ग्रसिहि जनु ऐहि बिधि अर्पा॥
मुरे सुभट सब फिरहिं न फेरे। सूझ न नयन सुनहिं नहिं टेरे॥3॥

रण के मद में मत्त राक्षस कुंभकर्ण इस प्रकार गर्वित हुआ, मानो विधाता ने उसको सारा विश्व अर्पण कर दिया हो और उसे वह ग्रास कर जाएगा। सब योद्धा भाग खड़े हुए, वे लौटाए भी नहीं लौटते। आँखों से उन्हें सूझ नहीं पड़ता और पुकारने से सुनते नहीं!॥3॥

कुंभकरन कपि फौज बिडारी। सुनि धाई रजनीचर धारी॥
देखी राम बिकल कटकाई। रिपु अनीक नाना बिधि आई॥4॥

कुंभकर्ण ने वानर सेना को तितर-बितर कर दिया। यह सुनकर राक्षस सेना भी दौड़ी। श्री रामचंद्रजी ने देखा कि अपनी सेना व्याकुल है और शत्रु की नाना प्रकार की सेना आ गई है॥4॥

दोहा :

सुनु सुग्रीव बिभीषन अनुज सँभारेहु सैन।
मैं देखउँ खल बल दलहि बोले राजिवनैन॥67॥

तब कमलनयन श्री रामजी बोले- हे सुग्रीव! हे विभीषण! और हे लक्ष्मण! सुनो, तुम सेना को संभालना। मैं इस दुष्ट के बल और सेना को देखता हूँ॥67॥

चौपाई :

कर सारंग साजि कटि भाथा। अरि दल दलन चले रघुनाथा॥
प्रथम कीन्हि प्रभु धनुष टंकोरा। रिपु दल बधिर भयउ सुनि सोरा॥1॥

हाथ में शार्गधनुष और कमर में तरकस सजाकर श्री रघुनाथजी शत्रु सेना को दलन करने चले। प्रभु ने पहले तो धनुष का टंकार किया, जिसकी भयानक आवाज सुनते ही शत्रु दल बहरा हो गया॥1॥

सत्यसंध छाँड़े सर लच्छा। कालसर्प जनु चले सपच्छा॥
जहँ तहँ चले बिपुल नाराचा। लगे कटन भट बिकट पिसाचा॥2॥

फिर सत्यप्रतिज्ञ श्री रामजी ने एक लाख बाण छोड़े। वे ऐसे चले मानो पंखवाले काल सर्प चले हों। जहाँ-तहाँ बहुत से बाण चले, जिनसे भयंकर राक्षस योद्धा कटने लगे॥2॥

कटहिं चरन उर सिर भुजदंडा। बहुतक बीर होहिं सत खंडा॥
घुर्मि घुर्मि घायल महि परहीं। उठि संभारि सुभट पुनि लरहीं॥3॥

उनके चरण, छाती, सिर और भुजदण्ड कट रहे हैं। बहुत से वीरों के सौ-सौ टुकड़े हो जाते हैं। घायल चक्कर खा-खाकर पृथ्वी पर पड़ रहे हैं। उत्तम योद्धा फिर संभलकर उठते और लड़ते हैं॥3॥

लागत बान जलद जिमि गाजहिं। बहुतक देखि कठिन सर भाजहिं॥
रुंड प्रचंड मुंड बिनु धावहिं। धरु धरु मारु मारु धुनि गावहिं॥4॥

बाण लगते ही वे मेघ की तरह गरजते हैं। बहुत से तो कठिन बाणों को देखकर ही भाग जाते हैं। बिना मुण्ड (सिर) के प्रचण्ड रुण्ड (धड़) दौड़ रहे हैं और 'पकड़ो, पकड़ो, मारो, मारो' का शब्द करते हुए गा (चिल्ला) रहे हैं॥4॥

दोहा :

छन महुँ प्रभु के सायकन्हि काटे बिकट पिसाच।
पुनि रघुबीर निषंग महुँ प्रबिसे सब नाराच॥68॥

प्रभु के बाणों ने क्षण मात्र में भयानक राक्षसों को काटकर रख दिया। फिर वे सब बाण लौटकर श्री रघुनाथजी के तरकस में घुस गए॥68॥

चौपाई :

कुंभकरन मन दीख बिचारी। हति छन माझ निसाचर धारी॥

भा अति क्रुद्ध महाबल बीरा। कियो मृगनायक नाद गँभीरा॥1॥

कुंभकर्ण ने मन में विचार कर देखा कि श्री रामजी ने क्षण मात्र में राक्षसी सेना का संहार कर डाला। तब वह महाबली वीर अत्यंत क्रोधित हुआ और उसने गंभीर सिंहनाद किया॥1॥

कोपि महीधर लेइ उपारी। डारइ जहँ मर्कट भट भारी॥
आवत देखि सैल प्रभु भारे। सरन्हि काटि रज सम करि डारे॥2॥

वह क्रोध करके पर्वत उखाड़ लेता है और जहाँ भारी-भारी वानर योद्धा होते हैं, वहाँ डाल देता है। बड़े-बड़े पर्वतों को आते देखकर प्रभु ने उनको बाणों से काटकर धूल के समान (चूर-चूर) कर डाला॥2॥

पुनि धनु तानि कोपि रघुनायक। छाँड़े अति कराल बहु सायक॥
तनु महुँ प्रबिसि निसरि सर जाहीं। जिमि दामिनि घन माझ समाहीं॥3॥

फिर श्री रघुनाथजी ने क्रोध करके धनुष को तानकर बहुत से अत्यंत भयानक बाण छोड़े। वे बाण कुंभकर्ण के शरीर में घुसकर (पीछे से इस प्रकार) निकल जाते हैं (कि उनका पता नहीं चलता), जैसे बिजलियाँ बादल में समा जाती हैं॥3॥

सोनित स्रवत सोह तन कारे। जनु कज्जल गिरि गेरु पनारे॥
बिकल बिलोकि भालु कपि धाए। बिहँसा जबहिं निकट कपि आए॥4॥

उसके काले शरीर से रुधिर बहता हुआ ऐसे शोभा देता है, मानो काजल के पर्वत से गेरु के पनाले बह रहे हों। उसे व्याकुल देखकर रीछ वानर दौड़े। वे ज्यों ही निकट आए, त्यों ही वह हँसा,॥4॥

दोहा :

महानाद करि गर्जा कोटि कोटि गहि कीस।
महि पटकइ गजराज इव सपथ करइ दससीस॥69॥

और बड़ा घोर शब्द करके गरजा तथा करोड़-करोड़ वानरों को पकड़कर वह गजराज की तरह उन्हें पृथ्वी पर पटकने लगा और रावण की दुहाई देने लगा॥69॥

चौपाई :

भागे भालु बलीमुख जूथा। बृकु बिलोकि जिमि मेष बरूथा॥
चले भागि कपि भालु भवानी। बिकल पुकारत आरत बानी॥1॥

यह देखकर रीछ-वानरों के झुंड ऐसे भागे जैसे भेड़िये को देखकर भेड़ों के झुंड! (शिवजी कहते हैं-) हे भवानी! वानर-भालू व्याकुल होकर आर्तवाणी से पुकारते हुए भाग चले॥1॥

यह निसिचर दुकाल सम अहई। कपिकुल देस परन अब चहई॥

कृपा बारिधर राम खरारी। पाहि पाहि प्रनतारति हारी॥2॥

(वे कहने लगे-) यह राक्षस दुर्भिक्ष के समान है, जो अब वानर कुल रूपी देश में पड़ना चाहता है। हे कृपा रूपी जल के धारण करने वाले मेघ रूप श्री राम! हे खर के शत्रु! हे शरणागत के दुःख हरने वाले! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए!॥2॥।

सकरुन बचन सुनत भगवाना। चले सुधारि सरासन बाना॥
राम सेन निज पाछें घाली। चले सकोप महा बलसाली॥3॥

करुणा भरे वचन सुनते ही भगवान् धनुष-बाण सुधारकर चले। महाबलशाली श्री रामजी ने सेना को अपने पीछे कर लिया और वे (अकेले) क्रोधपूर्वक चले (आगे बढ़े)॥3॥

खैंचि धनुष सर सत संधाने। छूटे तीर सरीर समाने॥
लागत सर धावा रिस भरा। कुधर डगमगत डोलति धरा॥4॥

उन्होंने धनुष को खींचकर सौ बाण संधान किए। बाण छूटे और उसके शरीर में समा गए। बाणों के लगते ही वह क्रोध में भरकर दौड़ा। उसके दौड़ने से पर्वत डगमगाने लगे और पृथ्वी हिलने लगी॥4॥

लीन्ह एक तेंहि सैल उपाटी। रघुकुलतिलक भुजा सोइ काटी॥
धावा बाम बाहु गिरि धारी। प्रभु सोउ भुजा काटि महि पारी॥5॥

उसने एक पर्वत उखाड़ लिया। रघुकुल तिलक श्री रामजी ने उसकी वह भुजा ही काट दी। तब वह बाएँ हाथ में पर्वत को लेकर दौड़ा। प्रभु ने उसकी वह भुजा भी काटकर पृथ्वी पर गिरा दी॥5॥

काटें भुजा सोह खल कैसा। पच्छहीन मंदर गिरि जैसा॥
उग्र बिलोकनि प्रभुहि बिलोका। ग्रसन चहत मानहुँ त्रैलोका॥6॥

भुजाओं के कट जाने पर वह दुष्ट कैसी शोभा पाने लगा, जैसे बिना पंख का मंदराचल पहाड़ हो। उसने उग्र दृष्टि से प्रभु को देखा। मानो तीनों लोकों को निगल जाना चाहता हो॥6॥

दोहा :

करि चिक्कार घोर अति धावा बदनु पसारि।
गगन सिद्ध सुर त्रासित हा हा हेति पुकारि॥70॥

वह बड़े जोर से चिग्घाड़ करके मुँह फैलाकर दौड़ा। आकाश में सिद्ध और देवता डरकर हा! हा! हा! इस प्रकार पुकारने लगे॥70॥

चौपाई :

सभय देव करुनानिधि जान्यो। श्रवन प्रजंत सरासुन तान्यो॥

बिसिख निकर निसिचर मुख भरेऊ। तदपि महाबल भूमि न परेऊ॥1॥

करुणानिधान भगवान् ने देवताओं को भयभीत जाना। तब उन्होंने धनुष को कान तक तानकर राक्षस के मुख को बाणों के समूह से भर दिया। तो भी वह महाबली पृथ्वी पर न गिरा॥1॥

सरन्हि भरा मुख सन्मुख धावा। काल त्रोन सजीव जनु आवा॥
तब प्रभु कोपि तीब्र सर लीन्हा। धर ते भिन्न तासु सिर कीन्हा॥2॥

मुख में बाण भरे हुए वह (प्रभु के) सामने दौड़ा। मानो काल रूपी सजीव तरकस ही आ रहा हो। तब प्रभु ने क्रोध करके तीक्ष्ण बाण लिया और उसके सिर को धड़ से अलग कर दिया॥2॥

सो सिर परेउ दसानन आगें। बिकल भयउ जिमि फनि मनि त्यागें॥
धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा। तब प्रभु काटि कीन्ह दुइ खंडा॥3॥

वह सिर रावण के आगे जा गिरा उसे देखकर रावण ऐसा व्याकुल हुआ जैसे मणि के छूट जाने पर सर्प। कुंभकर्ण का प्रचण्ड धड़ दौड़ा, जिससे पृथ्वी धँसी जाती थी। तब प्रभु ने काटकर उसके दो टुकड़े कर दिए॥3॥

परे भूमि जिमि नभ तें भूधर। हेठ दाबि कपि भालु निसाचर॥
तासु तेज प्रभु बदन समाना। सुर मुनि सबहिं अचंभव माना॥4॥

वानर-भालू और निशाचरों को अपने नीचे दबाते हुए वे दोनों टुकड़े पृथ्वी पर ऐसे पड़े जैसे आकाश से दो पहाड़ गिरे हों। उसका तेज प्रभु श्री रामचंद्रजी के मुख में समा गया। (यह देखकर) देवता और मुनि सभी ने आश्चर्य माना॥4॥

सुर दुंदुभीं बजावहिं हरषहिं। अस्तुति करहिं सुमन बहु बरषहिं॥
करि बिनती सुर सकल सिधाए। तेही समय देवरिषि आए॥5॥

देवता नगाड़े बजाते, हर्षित होते और स्तुति करते हुए बहुत से फूल बरसा रहे हैं। विनती करके सब देवता चले गए। उसी समय देवर्षि नारद आए॥5॥

गगनोपरि हरि गुन गन गाए। रुचिर बीररस प्रभु मन भाए॥
बेगि हतहु खल कहि मुनि गए। राम समर महि सोभत भए॥6॥

आकाश के ऊपर से उन्होंने श्री हरि के सुंदर वीर रसयुक्त गुण समूह का गान किया, जो प्रभु के मन को बहुत ही भाया। मुनि यह कहकर चले गए कि अब दुष्ट रावण को शीघ्र मारिए। (उस समय) श्री रामचंद्रजी रणभूमि में आकर (अत्यंत) सुशोभित हुए॥6॥

छंद :

संग्राम भूमि बिराज रघुपति अतुल बल कोसल धनी।
श्रम बिंदु मुख राजीव लोचन अरुन तन सोनित कनी॥

भुज जुगल फेरत सर सरासन भालु कपि चहु दिसि बने।
कह दास तुलसी कहि न सक छबि सेष जेहि आनन घने॥

अतुलनीय बल वाले कोसलपति श्री रघुनाथजी रणभूमि में सुशोभित हैं। मुख पर पसीने की बूँदें हैं, कमल समान नेत्र कुछ लाल हो रहे हैं। शरीर पर रक्त के कण हैं, दोनों हाथों से धनुष-बाण फिरा रहे हैं। चारों ओर रीछ-वानर सुशोभित हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रभु की इस छबि का वर्णन शेषजी भी नहीं कर सकते, जिनके बहुत से (हजार) मुख हैं।

दोहा :

निसिचर अधम मलाकर ताहि दीन्ह निज धाम।
गिरिजा ते नर मंदमति जे न भजहिं श्रीराम॥71॥

(शिवजी कहते हैं-) हे गिरिजे! कुंभकर्ण, जो नीच राक्षस और पाप की खान था, उसे भी श्री रामजी ने अपना परमधाम दे दिया। अतः वे मनुष्य (निश्चय ही) मंदबुद्धि हैं, जो उन श्री रामजी को नहीं भजते॥71॥

चौपाई :

दिन के अंत फिरीं द्वौ अनी। समर भई सुभटन्ह श्रम घनी॥
राम कृपाँ कपि दल बल बाढ़ा। जिमि तृन पाइ लाग अति डाढ़ा॥1॥

दिन का अन्त होने पर दोनों सेनाएँ लौट पड़ीं। (आज के युद्ध में) योद्धाओं को बड़ी थकावट हुई, परन्तु श्री रामजी की कृपा से वानर सेना का बल उसी प्रकार बढ़ गया, जैसे घास पाकर अग्नि बहुत बढ़ जाती है॥1॥(घ)॥

छीजहिं निसिचर दिनु अरु राती। निज मुख कहें सुकृत जेहि भाँती॥
बहु बिलाप दसकंधर करई। बंधु सीस पुनि पुनि उर धरई॥2॥

उधर राक्षस दिन-रात इस प्रकार घटते जा रहे हैं, जिस प्रकार अपने ही मुख से कहने पर पुण्य घट जाते हैं। रावण बहुत विलाप कर रहा है। बार-बार भाई (कुंभकर्ण) का सिर कलेजे से लगाता है॥2॥

रोवहिं नारि हृदय हति पानी। तासु तेज बल बिपुल बखानी॥
मेघनाद तेहि अवसर आयउ। कहि बहु कथा पिता समुझायउ॥3॥

स्त्रियाँ उसके बड़े भारी तेज और बल को बखान करके हाथों से छाती पीट-पीटकर रो रही हैं। उसी समय मेघनाद आया और उसने बहुत सी कथाएँ कहकर पिता को समझाया॥3॥

देखेहु कालि मोरि मनुसाई। अबहिं बहुत का करौं बड़ाई॥
इष्टदेव सैं बल रथ पायउँ। सो बल तात न तोहि देखायउँ॥4॥

(और कहा-) कल मेरा पुरुषार्थ देखिएगा। अभी बहुत बड़ाई क्या करूँ? हे तात! मैंने अपने इष्टदेव से जो बल और रथ पाया था, वह बल (और रथ) अब तक आपको नहीं दिखलाया था॥4॥

एहि बिधि जल्पत भयउ बिहाना। चहुँ दुआर लागे कपि नाना॥
इति कपि भालु काल सम बीरा। उत रजनीचर अति रनधीरा॥5॥

इस प्रकार डींग मारते हुए सबेरा हो गया। लंका के चारों दरवाजों पर बहुत से वानर आ डटे। इधर काल के समान वीर वानर-भालू हैं और उधर अत्यंत रणधीर राक्षस॥5॥

लरहिं सुभट निज निज जय हेतू। बरनि न जाइ समर खगकेतू॥6॥

>दोनों ओर के योद्धा अपनी-अपनी जय के लिए लड़ रहे हैं। हे गरुड़ उनके युद्ध का वर्णन नहीं किया जा सकता॥6॥

दोहा :

मेघनाद मायामय रथ चढ़ि गयउ अकास।
गर्जेउ अट्टहास करि भइ कपि कटकहि त्रास॥72॥

मेघनाद उसी (पूर्वोक्त) मायामय रथ पर चढ़कर आकाश में चला गया और अट्टहास करके गरजा, जिससे वानरों की सेना में भय छा गया॥72॥

चौपाई :

सक्ति सूल तरवारि कृपाना। अस्त्र सस्त्र कुलिसायुध नाना॥
डारइ परसु परिघ पाषाना। लागेउ बृष्टि करै बहु बाना॥1॥

वह शक्ति, शूल, तलवार, कृपाण आदि अस्त्र, शास्त्र एवं वज्र आदि बहुत से आयुध चलाने तथा फरसे, परिघ, पत्थर आदि डालने और बहुत से बाणों की वृष्टि करने लगा॥1॥

दस दिसि रहे बान नभ छाई। मानहुँ मघा मेघ झरि लाई॥
धरु धरु मारु सुनिअ धुनि काना। जो मारइ तेहि कोउ न जाना॥2॥

आकाश में दसों दिशाओं में बाण छा गए, मानो मघा नक्षत्र के बादलों ने झड़ी लगा दी हो। 'पकड़ो, पकड़ो, मारो' ये शब्द सुनाई पड़ते हैं। पर जो मार रहा है, उसे कोई नहीं जान पाता॥2॥

गहि गिरि तरु अकास कपि धावहिं। देखहिं तेहि न दुखित फिरि आवहिं॥
अवघट घाट बाट गिरि कंदर। माया बल कीन्हेसि सर पंजर॥3॥

पर्वत और वृक्षों को लेकर वानर आकाश में दौड़कर जाते हैं। पर उसे देख नहीं पाते, इससे दुःखी होकर लौट आते हैं। मेघनाद ने माया के बल से अटपटी घाटियों, रास्तों और पर्वतों-कन्दराओं को बाणों के पिंजरे बना दिए (बाणों से छा दिया)॥3॥

जाहिं कहाँ ब्याकुल भए बंदर। सुरपति बंदि परे जनु मंदर॥

मारुतसुत अंगद नल नीला। कीन्हेसि बिकल सकल बलसीला॥4॥

अब कहाँ जाएँ, यह सोचकर (रास्ता न पाकर) वानर व्याकुल हो गए। मानो पर्वत इंद्र की कैद में पड़े हों। मेघनाद ने मारुति हनुमान्, अंगद, नल और नील आदि सभी बलवानों को व्याकुल कर दिया॥4॥

पुनि लछिमन सुग्रीव बिभीषन। सरन्हि मारि कीन्हेसि जर्जर तन॥
पुनि रघुपति सैं जूझै लागा। सर छाँड़इ होइ लागहिं नागा॥5॥

फिर उसने लक्ष्मणजी, सुग्रीव और विभीषण को बाणों से मारकर उनके शरीर को छलनी कर दिया। फिर वह श्री रघुनाथजी से लड़ने लगा। वह जो बाण छोड़ता है, वे साँप होकर लगते हैं॥5॥

ब्याल पास बस भए खरारी। स्वबस अनंत एक अबिकारी॥
नट इव कपट चरित कर नाना। सदा स्वतंत्र एक भगवाना॥6॥

जो स्वतंत्र, अनन्त, एक (अखंड) और निर्विकार हैं, वे खर के शत्रु श्री रामजी (लीला से) नागपाश के वश में हो गए (उससे बँध गए) श्री रामचंद्रजी सदा स्वतंत्र, एक, (अद्वितीय) भगवान् हैं। वे नट की तरह अनेकों प्रकार के दिखावटी चरित्र करते हैं॥6॥

रन सोभा लगि प्रभुहिं बँधायो। नागपास देवन्ह भय पायो॥7॥

रण की शोभा के लिए प्रभु ने अपने को नागपाश में बाँध लिया, किन्तु उससे देवताओं को बड़ा भय हुआ॥7॥

दोहा :

गिरिजा जासु नाम जपि मुनि काटहिं भव पास।
सो कि बंध तर आवइ ब्यापक बिस्व निवास॥73॥

(शिवजी कहते हैं-) हे गिरिजे! जिनका नाम जपकर मुनि भव (जन्म-मृत्यु) की फाँसी को काट डालते हैं, वे सर्वव्यापक और विश्व निवास (विश्व के आधार) प्रभु कहीं बंधन में आ सकते हैं?॥73॥

चौपाई :

चरित राम के सगुन भवानी। तर्कि न जाहिं बुद्धि बल बानी॥
अस बिचारि जे तग्य बिरागी। रामहि भजहिं तर्क सब त्यागी॥1॥

हे भवानी! श्री रामजी की इस सगुण लीलाओं के विषय में बुद्धि और वाणी के बल से तर्क (निर्णय) नहीं किया जा सकता। ऐसा विचार कर जो तत्त्वज्ञानी और विरक्त पुरुष हैं, वे सब तर्क (शंका) छोड़कर श्री रामजी का भजन ही करते हैं॥1॥

ब्याकुल कटकु कीन्ह घननादा। पुनि भा प्रगट कहइ दुर्बादा॥
जामवंत कह खल रहु ठाढ़ा। सुनि करि ताहि क्रोध अति बाढ़ा॥2॥
मेघनाद ने सेना को व्याकुल कर दिया। फिर वह प्रकट हो गया और दुर्वचन कहने लगा। इस पर जाम्बवान् ने कहा- अरे दुष्ट! खड़ा रह। यह सुनकर उसे बड़ा क्रोध बढ़ा॥2॥

बूढ़ जानि सठ छाँड़ेउँ तोही। लागेसि अधम पचारै मोही॥
अस कहि तरल त्रिसूल चलायो। जामवंत कर गहि सोइ धायो॥3॥
अरे मूर्ख! मैंने बूढ़ा जानकर तुझको छोड़ दिया था। अरे अधम! अब तू मुझे ही ललकारने लगा है? ऐसा कहकर उसने चमकता हुआ त्रिशूल चलाया। जाम्बवान् उसी त्रिशूल को हाथ से पकड़कर दौड़ा॥3॥

मारिसि मेघनाद कै छाती। परा भूमि घुर्मित सुरघाती॥
पुनि रिसान गहि चरन फिरायो। महि पछारि निज बल देखरायो॥4॥
और उसे मेघनाद की छाती पर दे मारा। वह देवताओं का शत्रु चक्कर खाकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। जाम्बवान् ने फिर क्रोध में भरकर पैर पकड़कर उसको घुमाया और पृथ्वी पर पटककर उसे अपना बल दिखलाया॥4॥

बर प्रसाद सो मरइ न मारा। तब गहि पद लंका पर डारा॥
इहाँ देवरिषि गरुड़ पठायो। राम समीप सपदि सो आयो॥5॥
(किन्तु) वरदान के प्रताप से वह मारे नहीं मरता। तब जाम्बवान् ने उसका पैर पकड़कर उसे लंका पर फेंक दिया। इधर देवर्षि नारदजी ने गरुड़ को भेजा। वे तुरंत ही श्री रामजी के पास आ पहुँचे॥5॥

दोहा :

खगपति सब धरि खाए माया नाग बरुथ।
माया बिगत भए सब हरषे बानर जूथ॥74 क॥
पक्षीराज गरुड़जी सब माया-सर्पों के समूहों को पकड़कर खा गए। तब सब वानरों के झुंड माया से रहित होकर हर्षित हुए॥74 (क)॥

गहि गिरि पादप उपल नख धाए कीस रिसाइ।
चले तमीचर बिकलतर गढ़ पर चढ़े पराइ॥74 ख॥
पर्वत, वृक्ष, पत्थर और नख धारण किए वानर क्रोधित होकर दौड़े। निशाचर विशेष व्याकुल होकर भाग चले और भागकर किले पर चढ़ गए॥74 (ख)॥

चौपाई :

मेघनाद कै मुरछा जागी। पितहि बिलोकि लाज अति लागी॥
तुरत गयउ गिरिबर कंदरा। करौं अजय मख अस मन धरा॥1॥

मेघनाद की मूर्च्छा छूटी, (तब) पिता को देखकर उसे बड़ी शर्म लगी। मैं अजय (अजेय होने को) यज्ञ करूँ, ऐसा मन में निश्चय करके वह तुरंत श्रेष्ठ पर्वत की गुफा में चला गया॥1॥

इहाँ बिभीषन मंत्र बिचारा। सुनहु नाथ बल अतुल उदारा॥
मेघनाद मख करइ अपावन। खल मायावी देव सतावन॥2॥

यहाँ विभीषण ने सलाह विचारी (और श्री रामचंद्रजी से कहा-) हे अतुलनीय बलवान् उदार प्रभो! देवताओं को सताने वाला दुष्ट, मायावी मेघनाद अपवित्र यज्ञ कर रहा है॥2॥

जौं प्रभु सिद्ध होइ सो पाइहि। नाथ बेगि पुनि जीति न जाइहि॥
सुनि रघुपति अतिसय सुख माना। बोले अंगदादि कपि नाना॥3॥

हे प्रभो! यदि वह यज्ञ सिद्ध हो पाएगा तो हे नाथ! फिर मेघनाद जल्दी जीता न जा सकेगा। यह सुनकर श्री रघुनाथजी ने बहुत सुख माना और अंगदादि बहुत से वानरों को बुलाया (और कहा-)॥3॥

लछिमन संग जाहु सब भाई। करहु बिधंस जग्य कर जाई॥
तुम्ह लछिमन मारेहु रन ओही। देखि सभय सुर दुख अति मोही॥4॥

हे भाइयों! सब लोग लक्ष्मण के साथ जाओ और जाकर यज्ञ को विध्वंस करो। हे लक्ष्मण! संग्राम में तुम उसे मारना। देवताओं को भयभीत देखकर मुझे बड़ा दुःख है॥4॥

मारेहु तेहि बल बुद्धि उपाई। जेहिं छीजै निसिचर सुनु भाई॥
जामवंत सुग्रीव बिभीषन। सेन समेत रहेहु तीनिउ जन॥5॥

हे भाई! सुनो, उसको ऐसे बल और बुद्धि के उपाय से मारना, जिससे निशाचर का नाश हो। हे जाम्बवान, सुग्रीव और विभीषण! तुम तीनों जन सेना समेत (इनके) साथ रहना॥5॥

जब रघुबीर दीन्हि अनुसासन। कटि निषंग कसि साजि सरासन॥
प्रभु प्रताप उर धरि रनधीरा। बोले घन इव गिरा गँभीरा॥6॥

(इस प्रकार) जब श्री रघुवीर ने आज्ञा दी, तब कमर में तरकस कसकर और धनुष सजाकर (चढ़ाकर) रणधीर श्री लक्ष्मणजी प्रभु के प्रताप को हृदय में धारण करके मेघ के समान गंभीर वाणी बोले-॥6॥

जौं तेहि आजु बंधे बिनु आवौं। तौ रघुपति सेवक न कहावौं॥
जौं सत संकर करहिं सहाई। तदपि हतउँ रघुबीर दोहाई॥7॥

यदि मैं आज उसे बिना मारे आऊँ, तो श्री रघुनाथजी का सेवक न कहलाऊँ। यदि सैकड़ों शंकर भी उसकी सहायता करें तो भी श्री रघुवीर की दुहाई है, आज मैं उसे मार ही डालूँगा॥7॥

दोहा :

रघुपति चरन नाइ सिरु चलेउ तुरंत अनंत।
अंगद नील मयंद नल संग सुभट हनुमंत॥75॥

श्री रघुनाथजी के चरणों में सिर नवाकर शेषावतार श्री लक्ष्मणजी तुरंत चले। उनके साथ अंगद, नील, मयंद, नल और हनुमान आदि उत्तम योद्धा थे॥75॥

चौपाई :

जाइ कपिन्ह सो देखा बैसा। आहुति देत रुधिर अरु भैंसा॥
कीन्ह कपिन्ह सब जग्य बिधंसा। जब न उठइ तब करहिं प्रसंसा॥1॥

वानरों ने जाकर देखा कि वह बैठा हुआ खून और भैंसे की आहुति दे रहा है। वानरों ने सब यज्ञ विध्वंस कर दिया। फिर भी वह नहीं उठा, तब वे उसकी प्रशंसा करने लगे॥1॥

तदपि न उठइ धरेन्हि कच जाई। लातन्हि हति हति चले पराई॥
लै त्रिसूल धावा कपि भागे। आए जहँ रामानुज आगे॥2॥

इतने पर भी वह न उठा, (तब) उन्होंने जाकर उसके बाल पकड़े और लातों से मार-मारकर वे भाग चले। वह त्रिशूल लेकर दौड़ा, तब वानर भागे और वहाँ आ गए, जहाँ आगे लक्ष्मणजी खड़े थे॥2॥

आवा परम क्रोध कर मारा। गर्ज घोर रव बारहिं बारा॥
कोपि मरुतसुत अंगद धाए। हति त्रिसूल उर धरनि गिराए॥3॥

वह अत्यंत क्रोध का मारा हुआ आया और बार-बार भयंकर शब्द करके गरजने लगा। मारुति (हनुमान्) और अंगद क्रोध करके दौड़े। उसने छाती में त्रिशूल मारकर दोनों को धरती पर गिरा दिया॥3॥

प्रभु कहँ छाँड़ेसि सूल प्रचंडा। सर हति कृत अनंत जुग खंडा॥
उठि बहोरि मारुति जुबराजा। हतहिं कोपि तेहि घाउ न बाजा॥4॥

फिर उसने प्रभु श्री लक्ष्मणजी पर त्रिशूल छोड़ा। अनन्त (श्री लक्ष्मणजी) ने बाण मारकर उसके दो टुकड़े कर दिए। हनुमान्‌जी और युवराज अंगद फिर उठकर क्रोध करके उसे मारने लगे, उसे चोट न लगी॥4॥

फिरे बीर रिपु मरइ न मारा। तब धावा करि घोर चिकारा॥
आवत देखि कुरुद्ध जनु काला। लछिमन छाड़े बिसिख कराला॥5॥

शत्रु (मेघनाद) मारे नहीं मरता, यह देखकर जब वीर लौटे, तब वह घोर चिग्घाड़ करके दौड़ा। उसे क्रुद्ध काल की तरह आता देखकर लक्ष्मणजी ने भयानक बाण छोड़े॥5॥

देखेसि आवत पबि सम बाना। तुरत भयउ खल अंतरधाना॥
बिबिध बेष धरि करइ लराई। कबहुँक प्रगट कबहुँ दुरि जाई॥6॥

वज्र के समान बाणों को आते देखकर वह दुष्ट तुरंत अंतर्धान हो गया और फिर भाँति-भाँति के रूप धारण करके युद्ध करने लगा। वह कभी प्रकट होता था और कभी छिप जाता था॥6॥

देखि अजय रिपु डरपे कीसा। परम क्रुद्ध तब भयउ अहीसा॥
लछिमन मन अस मंत्र दृढ़ावा। ऐहि पापिहि मैं बहुत खेलावा॥7॥

शत्रु को पराजित न होता देखकर वानर डरे। तब सर्पराज शेषजी (लक्ष्मणजी) बहुत क्रोधित हुए। लक्ष्मणजी ने मन में यह विचार दृढ़ किया कि इस पापी को मैं बहुत खेला चुका (अब और अधिक खेलाना अच्छा नहीं, अब तो इसे समाप्त ही कर देना चाहिए।)॥7॥

सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा। सर संधान कीन्ह करि दापा॥
छाड़ा बान माझ उर लागा। मरती बार कपटु सब त्यागा॥8॥

कोसलपति श्री रामजी के प्रताप का स्मरण करके लक्ष्मणजी ने वीरोचित दर्प करके बाण का संधान किया। बाण छोड़ते ही उसकी छाती के बीच में लगा। मरते समय उसने सब कपट त्याग दिया॥8॥

दोहा :

रामानुज कहँ रामु कहँ अस कहि छाँड़ेसि प्रान।
धन्य धन्य तव जननी कह अंगद हनुमान॥76॥

राम के छोटे भाई लक्ष्मण कहाँ हैं? राम कहाँ हैं? ऐसा कहकर उसने प्राण छोड़ दिए। अंगद और हनुमान कहने लगे- तेरी माता धन्य है, धन्य है (जो तू लक्ष्मणजी के हाथों मरा और मरते समय श्री राम-लक्ष्मण को स्मरण करके तूने उनके नामों का उच्चारण किया।)॥76॥

चौपाई :

बिनु प्रयास हनुमान उठायो। लंका द्वार राखि पुनि आयो॥
तासु मरन सुनि सुर गंधर्बा। चढ़ि बिमान आए नभ सर्बा॥1॥

हनुमान्‌जी ने उसको बिना ही परिश्रम के उठा लिया और लंका के दरवाजे पर रखकर वे लौट आए। उसका मरना सुनकर देवता और गंधर्व आदि सब विमानों पर चढ़कर आकाश में आए॥1॥

बरषि सुमन दुंदुभीं बजावहिं। श्रीरघुनाथ बिमल जसु गावहिं॥

जय अनंत जय जगदाधारा। तुम्ह प्रभु सब देवन्हि निस्तारा॥2॥

वे फूल बरसाकर नगाड़े बजाते हैं और श्री रघुनाथजी का निर्मल यश गाते हैं। हे अनन्त! आपकी जय हो, हे जगदाधार! आपकी जय हो। हे प्रभो! आपने सब देवताओं का (महान् विपत्ति से) उद्धार किया॥2॥

अस्तुति करि सुर सिद्ध सिधाए। लछिमन कृपासिंधु पहिं आए॥
सुत बध सुना दसानन जबहीं। मुरुछित भयउ परेउ महि तबहीं॥3॥

देवता और सिद्ध स्तुति करके चले गए, तब लक्ष्मणजी कृपा के समुद्र श्री रामजी के पास आए। रावण ने ज्यों ही पुत्रवध का समाचार सुना, त्यों ही वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा॥3॥

मंदोदरी रुदन कर भारी। उर ताड़न बहु भाँति पुकारी॥
रनगर लोग सब ब्याकुल सोचा। सकल कहहिं दसकंधर पोचा॥4॥

मंदोदरी छाती पीट-पीटकर और बहुत प्रकार से पुकार-पुकारकर बड़ा भारी विलाप करने लगी। नगर के सब लोग शोक से व्याकुल हो गए। सभी रावण को नीच कहने लगे॥4॥

दोहा :

तब दसकंठ बिबिधि बिधि समुझाईं सब नारि।
नस्वर रूप जगत सब देखहु हृदयँ बिचारि॥77॥

तब रावण ने सब स्त्रियों को अनेकों प्रकार से समझाया कि समस्त जगत् का यह (दृश्य)रूप नाशवान् है, हृदय में विचारकर देखो॥77॥

चौपाई :

तिन्हहि ग्यान उपदेसा रावन। आपुन मंद कथा सुभ पावन॥
पर उपदेस कुसल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥1॥

रावण ने उनको ज्ञान का उपदेश किया। वह स्वयं तो नीच है, पर उसकी कथा (बातें) शुभ और पवित्र हैं। दूसरों को उपदेश देने में तो बहुत लोग निपुण होते हैं। पर ऐसे लोग अधिक नहीं हैं, जो उपदेश के अनुसार आचरण भी करते हैं॥1॥

निसा सिरानि भयउ भिनुसारा। लगे भालु कपि चारिहुँ द्वारा॥
सुभट बोलाइ दसानन बोला। रन सन्मुख जाकर मन डोला॥2॥

रात बीत गई, सबेरा हुआ। रीछ-वानर (फिर) चारों दरवाजों पर जा डटे। योद्धाओं को बुलाकर दशमुख रावण ने कहा- लड़ाई में शत्रु के सम्मुख मन डाँवाडोल हो,॥2॥

सो अबहीं बरु जाउ पराई। संजुग बिमुख भएँ न भलाई॥
निज भुज बल मैं बयरु बढ़ावा। देहउँ उतरु जो रिपु चढ़ि आवा॥3॥

अच्छा है वह अभी भाग जाए। युद्ध में जाकर विमुख होने (भागने) में भलाई नहीं है। मैंने अपनी भुजाओं के बल पर बैर बढ़ाया है। जो शत्रु चढ़ आया है, उसको मैं (अपने ही) उत्तर दे लूँगा॥3॥

अस कहि मरुत बेग रथ साजा। बाजे सकल जुझाऊ बाजा॥
चले बीर सब अतुलित बली। जनु कज्जल कै आँधी चली॥4॥

ऐसा कहकर उसने पवन के समान तेज चलने वाला रथ सजाया। सारे जुझाऊ (लड़ाई के) बाजे बजने लगे। सब अतुलनीय बलवान् वीर ऐसे चले मानो काजल की आँधी चली हो॥4॥

दोहा :

असगुन अमित होहिं तेहि काला। गनइ न भुज बल गर्ब बिसाला॥5॥

उस समय असंख्य अपशकुन होने लगे। पर अपनी भुजाओं के बल का बड़ा गर्व होने से रावण उन्हें गिनता नहीं है॥5॥

छंद :

अति गर्ब गनइ न सगुन असगुन स्रवहिं आयुध हाथ ते।
भट गिरत रथ ते बाजि गज चिक्करत भाजहिं साथ ते॥
गोमाय गीध कराल खर रव स्वान बोलहिं अति घने।
जनु कालदूत उलूक बोलहिं बचन परम भयावने॥

अत्यंत गर्व के कारण वह शकुन-अपशकुन का विचार नहीं करता। हथियार हाथों से गिर रहे हैं। योद्धा रथ से गिर पड़ते हैं। घोड़े, हाथी साथ छोड़कर चिग्घाड़ते हुए भाग जाते हैं। स्यार, गीध, कौए और गदहे शब्द कर रहे हैं। बहुत अधिक कुत्ते बोल रहे हैं। उल्लू ऐसे अत्यंत भयानक शब्द कर रहे हैं, मानो काल के दूत हों। (मृत्यु का संदेसा सुना रहे हों)।

दोहा :

ताहि कि संपति सगुन सुभ सपनेहुँ मन बिश्राम।
भूत द्रोह रत मोहबस राम बिमुख रति काम॥78॥

जो जीवों के द्रोह में रत है, मोह के बस हो रहा है, रामविमुख है और कामासक्त है, उसको क्या कभी स्वप्न में भी सम्पत्ति, शुभ शकुन और चित्त की शांति हो सकती है?॥78॥

चौपाई :

चलेउ निसाचर कटकु अपारा। चतुरंगिनी अनी बहु धारा॥
बिबिधि भाँति बाहन रथ जाना। बिपुल बरन पताक ध्वज नाना॥1॥

राक्षसों की अपार सेना चली। चतुरंगिणी सेना की बहुत सी U टुकड़ियाँ हैं। अनेकों प्रकार के

वाहन, रथ और सवारियाँ हैं तथा बहुत से रंगों की अनेकों पताकाएँ और ध्वजाएँ हैं॥1॥

चले मत्त गज जूथ घनेरे। प्राबिट जलद मरुत जनु प्रेरे॥
बरन बरन बिरदैत निकाया। समर सूर जानहिं बहु माया॥2॥

मतवाले हाथियों के बहुत से झुंड चले। मानो पवन से प्रेरित हुए वर्षा ऋतु के बादल हों। रंग-बिरंगे बाना धारण करने वाले वीरों के समूह हैं, जो युद्ध में बड़े शूरवीर हैं और बहुत प्रकार की माया जानते हैं॥2॥

अति बिचित्र बाहिनी बिराजी। बीर बसंत सेन जनु साजी॥
चलत कटक दिगसिंधुर डगहीं। छुभित पयोधि कुधर डगमगहीं॥3॥

अत्यंत विचित्र फौज शोभित है। मानो वीर वसंत ने सेना सजाई हो। सेना के चलने से दिशाओं के हाथी डिगने लगे, समुद्र क्षुभित हो गए और पर्वत डगमगाने लगे॥3॥

उठी रेनु रबि गयउ छपाई। मरुत थकित बसुधा अकुलाई॥
पनव निसान घोर रव बाजहिं। प्रलय समय के घन जनु गाजहिं॥4॥

इतनी धूल उड़ी कि सूर्य छिप गए। (फिर सहसा) पवन रुक गया और पृथ्वी अकुला उठी। ढोल और नगाड़े भीषण ध्वनि से बज रहे हैं, जैसे प्रलयकाल के बादल गरज रहे हों॥4॥

भेरि नफीरि बाज सहनाई। मारू राग सुभट सुखदाई॥
केहरि नाद बीर सब करहीं। निज निज बल पौरुष उच्चरहीं॥5॥

भेरी, नफीरी (तुरही) और शहनाई में योद्धाओं को सुख देने वाला मारू राग बज रहा है। सब वीर सिंहनाद करते हैं और अपने-अपने बल पौरुष का बखान कर रहे हैं॥5॥

कहइ दसानन सुनहू सुभट्टा। मर्दहु भालु कपिन्ह के ठट्टा॥
हौं मारिहउँ भूप द्वौ भाई। अस कहि सन्मुख फौज रेंगाई॥6॥

रावण ने कहा- हे उत्तम योद्धाओं! सुनो तुम रीछ-वानरों के ठट्ट को मसल डालो और मैं दोनों राजकुमार भाइयों को मारूँगा। ऐसा कहकर उसने अपनी सेना सामने चलाई॥6॥

यह सुधि सकल कपिन्ह जब पाई। धाए करि रघुबीर दोहाई॥7॥

जब सब वानरों ने यह खबर पाई, तब वे श्री राम की दुहाई देते हुए दौड़े॥7॥

छंद :

धाए बिसाल कराल मर्कट भालु काल समान ते।
मानहुँ सपच्छ उड़ाहिं भूधर बृंद नाना बान ते॥
नख दसन सैल महाद्रुमायुध सबल संक न मानहीं।
जय राम रावन मत्त गज मृगराज सुजसु बखानहीं॥

वे विशाल और काल के समान कराल वानर-भालू दौड़े। मानो पंख वाले पर्वतों के समूह उड़ रहे हों। वे अनेक वर्णों के हैं। नख, दाँत, पर्वत और बड़े-बड़े वृक्ष ही उनके हथियार हैं। वे बड़े बलवान् हैं और किसी का भी डर नहीं मानते। रावण रूपी मतवाले हाथी के लिए सिंह रूप श्री रामजी का जय-जयकार करके वे उनके सुंदर यश का बखान करते हैं।

दोहा :

दुहु दिसि जय जयकार करि निज जोरी जानि।
भिरे बीर इत रामहि उत रावनहि बखानि॥79॥

दोनों ओर के योद्धा जय-जयकार करके अपनी-अपनी जोड़ी जान (चुन) कर इधर श्री रघुनाथजी का और उधर रावण का बखान करके परस्पर भिड़ गए॥79॥

चौपाई :

रावनु रथी बिरथ रघुबीरा। देखि बिभीषन भयउ अधीरा॥
अधिक प्रीति मन भा संदेहा। बंदि चरन कह सहित सनेहा॥1॥

रावण को रथ पर और श्री रघुवीर को बिना रथ के देखकर विभीषण अधीर हो गए। प्रेम अधिक होने से उनके मन में सन्देह हो गया (कि वे बिना रथ के रावण को कैसे जीत सकेंगे)। श्री रामजी के चरणों की वंदना करके वे स्नेह पूर्वक कहने लगे॥1॥

नाथ न रथ नहि तन पद त्राना। केहि बिधि जितब बीर बलवाना॥
सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना॥2॥

हे नाथ! आपके न रथ है, न तन की रक्षा करने वाला कवच है और न जूते ही हैं। वह बलवान् वीर रावण किस प्रकार जीता जाएगा? कृपानिधान श्री रामजी ने कहा- हे सखे! सुनो, जिससे जय होती है, वह रथ दूसरा ही है॥2॥

सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे॥3॥

शौर्य और धैर्य उस रथ के पहिए हैं। सत्य और शील (सदाचार) उसकी मजबूत ध्वजा और पताका हैं। बल, विवेक, दम (इंद्रियों का वश में होना) और परोपकार- ये चार उसके घोड़े हैं, जो क्षमा, दया और समता रूपी डोरी से रथ में जोड़े हुए हैं॥3॥

ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा॥4॥

ईश्वर का भजन ही (उस रथ को चलाने वाला) चतुर सारथी है। वैराग्य ढाल है और संतोष तलवार है। दान फरसा है, बुद्धि प्रचण्ड शक्ति है, श्रेष्ठ विज्ञान कठिन धनुष है॥4॥

अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद बिप्र गुर पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा॥5॥
निर्मल (पापरहित) और अचल (स्थिर) मन तरकस के समान है। शम (मन का वश में होना), (अहिंसादि) यम और (शौचादि) नियम- ये बहुत से बाण हैं। ब्राह्मणों और गुरु का पूजन अभेद्य कवच है। इसके समान विजय का दूसरा उपाय नहीं है॥5॥

सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें॥6॥
हे सखे! ऐसा धर्ममय रथ जिसके हो उसके लिए जीतने को कहीं शत्रु ही नहीं है॥6॥

दोहा :

महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर।
जाकें अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर॥80 क॥
हे धीरबुद्धि वाले सखा! सुनो, जिसके पास ऐसा दृढ़ रथ हो, वह वीर संसार (जन्म-मृत्यु) रूपी महान् दुर्जय शत्रु को भी जीत सकता है (रावण की तो बात ही क्या है)॥80 (क)॥

सुनि प्रभु बचन बिभीषन हरषि गहे पद कंज।
एहि मिस मोहि उपदेसेहु राम कृपा सुख पुंज॥80 ख
प्रभु के वचन सुनकर विभीषणजी ने हर्षित होकर उनके चरण कमल पकड़ लिए (और कहा-) हे कृपा और सुख के समूह श्री रामजी! आपने इसी बहाने मुझे (महान्) उपदेश दिया॥80 (ख)॥

उत पचार दसकंधर इत अंगद हनुमान।
लरत निसाचर भालु कपि करि निज निज प्रभु आन॥80 ग॥
उधर से रावण ललकार रहा है और इधर से अंगद और हनुमान । राक्षस और रीछ-वानर अपने-अपने स्वामी की दुहाई देकर लड़ रहे हैं॥80 (ग)॥

चौपाई :

सुर ब्रह्मादि सिद्ध मुनि नाना। देखत रन नभ चढ़े बिमाना॥
हमहू उमा रहे तेहिं संगा। देखत राम चरित रन रंगा॥1॥
ब्रह्मा आदि देवता और अनेकों सिद्ध तथा मुनि विमानों पर चढ़े हुए आकाश से युद्ध देख रहे हैं। (शिवजी कहते हैं-) हे उमा! मैं भी उस समाज में था और श्री रामजी के रण-रंग (रणोत्साह) की लीला देख रहा था॥1॥

सुभट समर रस दुहु दिसि माते। कपि जयसील राम बल ताते॥
एक एक सन भिरहिं पचारहिं। एकन्ह एक मर्दि महि पारहिं॥2॥
दोनों ओर के योद्धा रण रस में मतवाले हो रहे हैं। वानरों को श्री रामजी का बल है, इससे वे

जयशील हैं (जीत रहे हैं)। एक-दूसरे से भिड़ते और ललकारते हैं और एक-दूसरे को मसल-मसलकर पृथ्वी पर डाल देते हैं॥2॥

मारहिं काटहिं धरहिं पछारहिं। सीस तोरि सीसन्ह सन मारहिं॥
उदर बिदारहिं भुजा उपारहिं। गहि पद अवनि पटकि भट डारहिं॥3॥

वे मारते, काटते, पकड़ते और पछाड़ देते हैं और सिर तोड़कर उन्हीं सिरों से दूसरों को मारते हैं। पेट फाड़ते हैं, भुजाएँ उखाड़ते हैं और योद्धाओं को पैर पकड़कर पृथ्वी पर पटक देते हैं॥3॥

निसिचर भट महि गाड़हिं भालू। ऊपर ढारि देहिं बहु बालू॥
बीर बलीमुख जुद्ध बिरुद्धे। देखिअत बिपुल काल जनु क्रुद्धे॥4॥

राक्षस योद्धाओं को भालू पृथ्वी में गाड़ देते हैं और ऊपर से बहुत सी बालू डाल देते हैं। युद्ध में शत्रुओं से विरुद्ध हुए वीर वानर ऐसे दिखाई पड़ते हैं मानो बहुत से क्रोधित काल हों॥4॥

छंद :

क्रुद्धे कृतांत समान कपि तन स्रवत सोनित राजहीं।
मर्दहिं निसाचर कटक भट बलवंत घन जिमि गाजहीं॥
मारहिं चपेटन्हि डाटि दातन्ह काटि लातन्ह मीजहीं।
चिक्करहिं मर्कट भालु छल बल करहिं जेहिं खल छीजहीं॥1॥

क्रोधित हुए काल के समान वे वानर खून बहते हुए शरीरों से शोभित हो रहे हैं। वे बलवान् वीर राक्षसों की सेना के योद्धाओं को मसलते और मेघ की तरह गरजते हैं। डाँटकर चपेटों से मारते, दाँतों से काटकर लातों से पीस डालते हैं। वानर-भालू चिग्घाड़ते और ऐसा छल-बल करते हैं, जिससे दुष्ट राक्षस नष्ट हो जाएँ॥1॥

धरि गाल फारहिं उर बिदारहिं गल अँतावरि मेलहीं।
प्रह्लादपति जनु बिबिध तनु धरि समर अंगन खेलहीं॥
धरु मारु काटु पछारु घोर गिरा गगन महि भरि रही।
जय राम जो तृन ते कुलिस कर कुलिस ते कर तृन सही॥2॥

वे राक्षसों के गाल पकड़कर फाड़ डालते हैं, छाती चीर डालते हैं और उनकी अँतड़ियाँ निकालकर गले में डाल लेते हैं। वे वानर ऐसे दिख पड़ते हैं मानो प्रह्लाद के स्वामी श्री नृसिंह भगवान् अनेकों शरीर धारण करके युद्ध के मैदान में क्रीड़ा कर रहे हों। पकड़ो, मारो, काटो, पछाड़ो आदि घोर शब्द आकाश और पृथ्वी में भर (छा) गए हैं। श्री रामचंद्रजी की जय हो, जो सचमुच तृण से वज्र और वज्र से तृण कर देते हैं (निर्बल को सबल और सबल को निर्बल कर देते हैं)॥2॥

दोहा :

निज दल बिचलत देखेसि बीस भुजाँ दस चाप।
रथ चढ़ि चलेउ दसानन फिरहु फिरहु करि दाप॥81॥
अपनी सेना को विचलित होते हुए देखा, तब बीस भुजाओं में दस धनुष लेकर रावण रथ पर चढ़कर गर्व करके 'लौटो, लौटो' कहता हुआ चला॥81॥

चौपाई :

धायउ परम क्रुद्ध दसकंधर। सन्मुख चले हूह दै बंदर॥
गहि कर पादप उपल पहारा। डारेन्हि ता पर एकहिं बारा॥1॥
रावण अत्यंत क्रोधित होकर दौड़ा। वानर हुँकार करते हुए (लड़ने के लिए) उसके सामने चले। उन्होंने हाथों में वृक्ष, पत्थर और पहाड़ लेकर रावण पर एक ही साथ डाले॥1॥

लागहिं सैल बज्र तन तासू। खंड खंड होइ फूटहिं आसू॥
चला न अचल रहा रथ रोपी। रन दुर्मद रावन अति कोपी॥2॥
पर्वत उसके वज्रतुल्य शरीर में लगते ही तुरंत टुकड़े-टुकड़े होकर फूट जाते हैं। अत्यंत क्रोधी रणोन्मत्त रावण रथ रोककर अचल खड़ा रहा, (अपने स्थान से) जरा भी नहीं हिला॥2॥

इत उत झपटि दपटि कपि जोधा। मर्दै लाग भयउ अति क्रोधा॥
चले पराइ भालु कपि नाना। त्राहि त्राहि अंगद हनुमाना॥3॥
उसे बहुत ही क्रोध हुआ। वह इधर-उधर झपटकर और डपटकर वानर योद्धाओं को मसलने लगा। अनेकों वानर-भालू 'हे अंगद! हे हनुमान्! रक्षा करो, रक्षा करो' (पुकारते हुए) भाग चले॥3॥

पाहि पाहि रघुबीर गोसाईं। यह खल खाइ काल की नाईं॥
तेहिं देखे कपि सकल पराने। दसहुँ चाप सायक संधाने॥4॥
हे रघुवीर! हे गोसाईं! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए। यह दुष्ट काल की भाँति हमें खा रहा है। उसने देखा कि सब वानर भाग छूटे, तब (रावण ने) दसों धनुषों पर बाण संधान किए॥4॥

छंद :

संधानि धनु सर निकर छाड़ेसि उरग जिमि उड़ि लागहीं।
रहे पूरि सर धरनी गगन दिसि बिदिसि कहँ कपि भागहीं॥
भयो अति कोलाहल बिकल कपि दल भालु बोलहिं आतुरे।
रघुबीर करुना सिंधु आरत बंधु जन रच्छक हरे॥
उसने धनुष पर सन्धान करके बाणों के समूह छोड़े। वे बाण सर्प की तरह उड़कर जा लगते थे। पृथ्वी-आकाश और दिशा-विदिशा सर्वत्र बाण भर रहे हैं। वानर भागें तो कहाँ? अत्यंत कोलाहल मच गया। वानर-भालुओं की सेना व्याकुल होकर आर्त्त पुकार करने लगी- हे रघुवीर! हे

करुणासागर! हे पीड़ितों के बन्धु! हे सेवकों की रक्षा करके उनके दुःख हरने वाले हरि!

दोहा :

निज दल बिकल देखि कटि कसि निषंग धनु हाथ।
लछिमन चले क्रुद्ध होइ नाइ राम पद माथ॥82॥

अपनी सेना को व्याकुल देखकर कमर में तरकस कसकर और हाथ में धनुष लेकर श्री रघुनाथजी के चरणों पर मस्तक नवाकर लक्ष्मणजी क्रोधित होकर चले॥82॥

चौपाई :

रे खल का मारसि कपि भालू। मोहि बिलोकु तोर मैं कालू॥
खोजत रहेउँ तोहि सुतघाती। आजु निपाति जुड़ावउँ छाती॥1॥

(लक्ष्मणजी ने पास जाकर कहा-) अरे दुष्ट! वानर भालुओं को क्या मार रहा है? मुझे देख, मैं तेरा काल हूँ। (रावण ने कहा-) अरे मेरे पुत्र के घातक! मैं तुझी को ढूँढ रहा था। आज तुझे मारकर (अपनी) छाती ठंडी करूँगा॥1॥

अस कहि छाड़ेसि बान प्रचंडा। लछिमन किए सकल सत खंडा॥
कोटिन्ह आयुध रावन डारे। तिल प्रवान करि काटि निवारे॥2॥

ऐसा कहकर उसने प्रचण्ड बाण छोड़े। लक्ष्मणजी ने सबके सैकड़ों टुकड़े कर डाले। रावण ने करोड़ों अस्त्र-शस्त्र चलाए। लक्ष्मणजी ने उनको तिल के बराबर करके काटकर हटा दिया॥2॥

पुनि निज बानन्ह कीन्ह प्रहारा। स्यंदनु भंजि सारथी मारा॥
सत सत सर मारे दस भाला। गिरि सृंगन्ह जनु प्रबिसहिं ब्याला॥3॥

फिर अपने बाणों से (उस पर) प्रहार किया और (उसके) रथ को तोड़कर सारथी को मार डाला। (रावण के) दसों मस्तकों में सौ-सौ बाण मारे। वे सिरों में ऐसे पैठ गए मानो पहाड़ के शिखरों में सर्प प्रवेश कर रहे हों॥3॥

पुनि सुत सर मारा उर माहीं। परेउ धरनि तल सुधि कछु नाहीं॥
उठा प्रबल पुनि मुरुछा जागी। छाड़िसि ब्रह्म दीन्हि जो साँगी॥4॥

फिर सौ बाण उसकी छाती में मारे। वह पृथ्वी पर गिर पड़ा, उसे कुछ भी होश न रहा। फिर मूर्च्छा छूटने पर वह प्रबल रावण उठा और उसने वह शक्ति चलाई जो ब्रह्माजी ने उसे दी थी॥4॥

छंद :

सो ब्रह्म दत्त प्रचंड सक्ति अनंत उर लागी सही।
पर्‌यो बीर बिकल उठाव दसमुख अतुल बल महिमा रही॥

ब्रह्मांड भवन बिराज जाकें एक सिर जिमि रज कनी।
तेहि चह उठावन मूढ रावन जान नहिं त्रिभुअन धनी॥

वह ब्रह्मा की दी हुई प्रचण्ड शक्ति लक्ष्मणजी की ठीक छाती में लगी। वीर लक्ष्मणजी व्याकुल होकर गिर पड़े। तब रावण उन्हें उठाने लगा, पर उसके अतुलित बल की महिमा यों ही रह गई, (व्यर्थ हो गई, वह उन्हें उठा न सका)। जिनके एक ही सिर पर ब्रह्मांड रूपी भवन धूल के एक कण के समान विराजता है, उन्हें मूर्ख रावण उठाना चाहता है! वह तीनों भुवनों के स्वामी लक्ष्मणजी को नहीं जानता।

दोहा :

देखि पवनसुत धायउ बोलत बचन कठोर।
आवत कपिहि हन्यो तेहिं मुष्टि प्रहार प्रघोर॥83॥

यह देखकर पवनपुत्र हनुमान्‌जी कठोर वचन बोलते हुए दौड़े। हनुमान्‌जी के आते ही रावण ने उन पर अत्यंत भयंकर घूँसे का प्रहार किया॥83॥

चौपाई:

जानु टेकि कपि भूमि न गिरा। उठा सँभारि बहुत रिस भरा॥
मुठिका एक ताहि कपि मारा। परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा॥1॥

हनुमान्‌जी घुटने टेककर रह गए, पृथ्वी पर गिरे नहीं और फिर क्रोध से भरे हुए संभलकर उठे। हनुमान्‌जी ने रावण को एक घूँसा मारा। वह ऐसा गिर पड़ा जैसे वज्र की मार से पर्वत गिरा हो॥1॥

मुरुछा गै बहोरि सो जागा। कपि बल बिपुल सराहन लागा॥
धिग धिग मम पौरुष धिग मोही। जौं तैं जिअत रहेसि सुरद्रोही॥2॥

मूर्च्छा भंग होने पर फिर वह जागा और हनुमान्‌जी के बड़े भारी बल को सराहने लगा। (हनुमान्‌जी ने कहा-) मेरे पौरुष को धिक्कार है, धिक्कार है और मुझे भी धिक्कार है, जो हे देवद्रोही! तू अब भी जीता रह गया॥2॥

अस कहि लछिमन कहुँ कपि ल्यायो। देखि दसानन बिसमय पायो॥
कह रघुबीर समुझु जियँ भ्राता। तुम्ह कृतांत भच्छक सुर त्राता॥3॥

ऐसा कहकर और लक्ष्मणजी को उठाकर हनुमान्‌जी श्री रघुनाथजी के पास ले आए। यह देखकर रावण को आश्चर्य हुआ। श्री रघुवीर ने (लक्ष्मणजी से) कहा- हे भाई! हृदय में समझो, तुम काल के भी भक्षक और देवताओं के रक्षक हो॥3॥

सुनत बचन उठि बैठ कृपाला। गई गगन सो सकति कराला॥

पुनि कोदंड बान गहि धाए। रिपु सन्मुख अति आतुर आए॥4॥

ये वचन सुनते ही कृपालु लक्ष्मणजी उठ बैठे। वह कराल शक्ति आकाश को चली गई। लक्ष्मणजी फिर धनुष-बाण लेकर दौड़े और बड़ी शीघ्रता से शत्रु के सामने आ पहुँचे॥4॥

छंद :

आतुर बहोरि बिभंजि स्यंदन सूत हति ब्याकुल कियो।
गिर्‌यो धरनि दसकंधर बिकलतर बान सत बेध्यो हियो॥
सारथी दूसर घालि रथ तेहि तुरत लंका लै गयो।
रघुबीर बंधु प्रताप पुंज बहोरि प्रभु चरनन्हि नयो॥

फिर उन्होंने बड़ी ही शीघ्रता से रावण के रथ को चूर-चूर कर और सारथी को मारकर उसे (रावण को) व्याकुल कर दिया। सौ बाणों से उसका हृदय बेध दिया, जिससे रावण अत्यंत व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब दूसरा सारथी उसे रथ में डालकर तुरंत ही लंका को ले गया। प्रताप के समूह श्री रघुवीर के भाई लक्ष्मणजी ने फिर आकर प्रभु के चरणों में प्रणाम किया।

दोहा:

उहाँ दसानन जागि करि करै लाग कछु जग्य।
राम बिरोध बिजय चह सठ हठ बस अति अग्य॥84॥

वहाँ (लंका में) रावण मूर्छा से जागकर कुछ यज्ञ करने लगा। वह मूर्ख और अत्यंत अज्ञानी हठवश श्री रघुनाथजी से विरोध करके विजय चाहता है॥84॥

चौपाई :

इहाँ बिभीषन सब सुधि पाई। सपदि जाइ रघुपतिहि सुनाई॥
नाथ करइ रावन एक जागा। सिद्ध भएँ नहिं मरिहि अभागा॥1॥

यहाँ विभीषणजी ने सब खबर पाई और तुरंत जाकर श्री रघुनाथजी को कह सुनाई कि हे नाथ! रावण एक यज्ञ कर रहा है। उसके सिद्ध होने पर वह अभागा सहज ही नहीं मरेगा॥1॥

पठवहु नाथ बेगि भट बंदर। करहिं बिधंस आव दसकंधर॥
प्रात होत प्रभु सुभट पठाए। हनुमदादि अंगद सब धाए॥2।

हे नाथ! तुरंत वानर योद्धाओं को भेजिए, जो यज्ञ का विध्वंस करें, जिससे रावण युद्ध में आवे। प्रातःकाल होते ही प्रभु ने वीर योद्धाओं को भेजा। हनुमान् और अंगद आदि सब (प्रधान वीर) दौड़े॥2॥

कौतुक कूदि चढ़े कपि लंका। पैठे रावन भवन असंका॥

जग्य करत जबहीं सो देखा। सकल कपिन्ह भा क्रोध बिसेषा॥3॥

वानर खेल से ही कूदकर लंका पर जा चढ़े और निर्भय होकर रावण के महल में जा घुसे। ज्यों ही उसको यज्ञ करते देखा, त्यों ही सब वानरों को बहुत क्रोध हुआ॥3॥

रन ते निलज भाजि गृह आवा। इहाँ आइ बक ध्यान लगावा।
अस कहि अंगद मारा लाता। चितव न सठ स्वारथ मन राता॥4॥

(उन्होंने कहा-) अरे ओ निर्लज्ज! रणभूमि से घर भाग आया और यहाँ आकर बगुले का सा ध्यान लगाकर बैठा है? ऐसा कहकर अंगद ने लात मारी। पर उसने इनकी ओर देखा भी नहीं, उस दुष्ट का मन स्वार्थ में अनुरक्त था॥4॥

छंद :

नहिं चितव जब करि कोप कपि गहि दसन लातन्ह मारहीं।
धरि केस नारि निकारि बाहेर तेऽतिदीन पुकारहीं॥
तब उठेउ क्रुद्ध कृतांत सम गहि चरन बानर डारई।
एहि बीच कपिन्ह बिधंस कृत मख देखि मन महुँ हारई॥

जब उसने नहीं देखा, तब वानर क्रोध करके उसे दाँतों से पकड़कर (काटने और) लातों से मारने लगे। स्त्रियों को बाल पकड़कर घर से बाहर घसीट लाए, वे अत्यंत ही दीन होकर पुकारने लगीं। तब रावण काल के समान क्रोधित होकर उठा और वानरों को पैर पकड़कर पटकने लगा। इसी बीच में वानरों ने यज्ञ विध्वंस कर डाला, यह देखकर वह मन में हारने लगा। (निराश होने लगा)।

दोहा :

जग्य बिधंसि कुसल कपि आए रघुपति पास।
चलेउ निसाचर कुरद्ध होइ त्यागि जिवन कै आस॥85॥

यज्ञ विध्वंस करके सब चतुर वानर रघुनाथजी के पास आ गए। तब रावण जीने की आश छोड़कर क्रोधित होकर चला॥85॥

चौपाई :

चलत होहिं अति असुभ भयंकर। बैठहिं गीध उड़ाइ सिरन्ह पर॥
भयउ कालबस काहु न माना। कहेसि बजावहु जुद्ध निसाना॥1॥

चलते समय अत्यंत भयंकर अमंगल (अपशकुन) होने लगे। गीध उड़-उड़कर उसके सिरों पर बैठने लगे, किन्तु वह काल के वश था, इससे किसी भी अपशकुन को नहीं मानता था। उसने कहा- युद्ध का डंका बजाओ॥1॥

चली तमीचर अनी अपारा। बहु गज रथ पदाति असवारा॥
प्रभु सन्मुख धाए खल कैसें। सलभ समूह अनल कहँ जैसें॥2॥

निशाचरों की अपार सेना चली। उसमें बहुत से हाथी, रथ, घुड़सवार और पैदल हैं। वे दुष्ट प्रभु के सामने कैसे दौड़े, जैसे पतंगों के समूह अग्नि की ओर (जलने के लिए) दौड़ते हैं॥।2॥

इहाँ देवतन्ह अस्तुति कीन्ही। दारुन बिपति हमहि एहिं दीन्ही॥
अब जनि राम खेलावहु एही। अतिसय दुखित होति बैदेही॥3॥

इधर देवताओं ने स्तुति की कि हे श्री रामजी! इसने हमको दारुण दुःख दिए हैं। अब आप इसे (अधिक) न खेलाइए। जानकीजी बहुत ही दुःखी हो रही हैं॥3॥

दोहा :

देव बचन सुनि प्रभु मुसुकाना। उठि रघुबीर सुधारे बाना॥
जटा जूट दृढ़ बाँधें माथे। सोहहिं सुमन बीच बिच गाथे॥4॥

देवताओं के वचन सुनकर प्रभु मुस्कुराए। फिर श्री रघुवीर ने उठकर बाण सुधारे। मस्तक पर जटाओं के जूड़े को कसकर बाँधे हुए हैं, उसके बीच-बीच में पुष्प गूँथे हुए शोभित हो रहे हैं॥4॥

अरुन नयन बारिद तनु स्यामा। अखिल लोक लोचनाभिरामा॥
कटितट परिकर कस्यो निषंगा। कर कोदंड कठिन सारंगा॥5॥

लाल नेत्र और मेघ के समान श्याम शरीर वाले और संपूर्ण लोकों के नेत्रों को आनंद देने वाले हैं। प्रभु ने कमर में फेंटा तथा तरकस कस लिया और हाथ में कठोर शार्ग धनुष ले लिया॥5॥

छंद :

सारंग कर सुंदर निषंग सिलीमुखाकर कटि कस्यो।
भुजदंड पीन मनोहरायत उर धरासुर पद लस्यो॥
कह दास तुलसी जबहिं प्रभु सर चाप कर फेरन लगे।
ब्रह्मांड दिग्गज कमठ अहि महि सिंधु भूधर डगमगे॥

प्रभु ने हाथ में शार्ग धनुष लेकर कमर में बाणों की खान (अक्षय) सुंदर तरकस कस लिया। उनके भुजदण्ड पुष्ट हैं और मनोहर चौड़ी छाती पर ब्राह्मण (भृगुजी) के चरण का चिह्न शोभित है। तुलसीदासजी कहते हैं, ज्यों ही प्रभु धनुष-बाण हाथ में लेकर फिराने लगे, त्यों ही ब्रह्माण्ड, दिशाओं के हाथी, कच्छप, शेषजी, पृथ्वी, समुद्र और पर्वत सभी डगमगा उठे।

दोहा :

सोभा देखि हरषि सुर बरषहिं सुमन अपार।
जय जय जय करुनानिधि छबि बल गुन आगार॥86॥

(भगवान् की) शोभा देखकर देवता हर्षित होकर फूलों की अपार वर्षा करने लगे और शोभा, शक्ति और गुणों के धाम करुणानिधान प्रभु की जय हो, जय हो, जय हो (ऐसा पुकारने लगे)॥86॥

चौपाई :

एहीं बीच निसाचर अनी। कसमसात आई अति घनी॥
देखि चले सन्मुख कपि भट्टा। प्रलयकाल के जनु घन घट्टा॥1॥

इसी बीच में निशाचरों की अत्यंत घनी सेना कसमसाती हुई (आपस में टकराती हुई) आई। उसे देखकर वानर योद्धा इस प्रकार (उसके) सामने चले जैसे प्रलयकाल के बादलों के समूह हों॥1॥

बहु कृपान तरवारि चमंकहिं। जनु दहँ दिसि दामिनीं दमंकहिं॥
गज रथ तुरग चिकार कठोरा। गर्जहिं मनहुँ बलाहक घोरा॥2॥

बहुत से कृपाल और तलवारें चमक रही हैं। मानो दसों दिशाओं में बिजलियाँ चमक रही हों। हाथी, रथ और घोड़ों का कठोर चिंग्घाड़ ऐसा लगता है मानो बादल भयंकर गर्जन कर रहे हों॥2॥

कपि लंगूर बिपुल नभ छाए। मनहुँ इंद्रधनु उए सुहाए॥
उठइ धूरि मानहुँ जलधारा। बान बुंद भै बृष्टि अपारा॥3॥

वानरों की बहुत सी पूँछें आकाश में छाई हुई हैं। (वे ऐसी शोभा दे रही हैं) मानो सुंदर इंद्रधनुष उदय हुए हों। धूल ऐसी उठ रही है मानो जल की धारा हो। बाण रूपी बूँदों की अपार वृष्टि हुई॥3॥

दुहुँ दिसि पर्बत करहिं प्रहारा। बज्रपात जनु बारहिं बारा॥
रघुपति कोपि बान झरि लाई। घायल भै निसिचर समुदाई॥4॥

दोनों ओर से योद्धा पर्वतों का प्रहार करते हैं। मानो बारंबार वज्रपात हो रहा हो। श्री रघुनाथजी ने क्रोध करके बाणों की झड़ी लगा दी, (जिससे) राक्षसों की सेना घायल हो गई॥4॥

लागत बान बीर चिक्करहीं। घुर्मि घुर्मि जहँ तहँ महि परहीं॥
स्रवहिं सैल जनु निर्झर भारी। सोनित सरि कादर भयकारी॥5॥

बाण लगते ही वीर चीत्कार कर उठते हैं और चक्कर खा-खाकर जहाँ-तहाँ पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। उनके शरीर से ऐसे खून बह रहा है मानो पर्वत के भारी झरनों से जल बह रहा हो। इस प्रकार डरपोकों को भय उत्पन्न करने वाली रुधिर की नदी बह चली॥5॥

छंद :

कादर भयंकर रुधिर सरिता चली परम अपावनी।
दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अबर्त बहति भयावनी॥

जलजंतु गज पदचर तुरग खर बिबिध बाहन को गने।
सर सक्ति तोमर सर्प चाप तरंग चर्म कमठ घने॥

डरपोकों को भय उपजाने वाली अत्यंत अपवित्र रक्त की नदी बह चली। दोनों दल उसके दोनों किनारे हैं। रथ रेत है और पहिए भँवर हैं। वह नदी बहुत भयावनी बह रही है। हाथी, पैदल, घोड़े, गदहे तथा अनेकों सवारियाँ ही, जिनकी गिनती कौन करे, नदी के जल जन्तु हैं। बाण, शक्ति और तोमर सर्प हैं, धनुष तरंगें हैं और ढाल बहुत से कछुवे हैं।

दोहा :

बीर परहिं जनु तीर तरु मज्जा बहु बह फेन।
कादर देखि डरहिं तहँ सुभटन्ह के मन चेन॥87॥

वीर पृथ्वी पर इस तरह गिर रहे हैं, मानो नदी-किनारे के वृक्ष ढह रहे हों। बहुत सी मज्जा बह रही है, वही फेन है। डरपोक जहाँ इसे देखकर डरते हैं, वहाँ उत्तम योद्धाओं के मन में सुख होता है॥87॥

चौपाई :

मज्जहिं भूत पिसाच बेताला। प्रमथ महा झोटिंग कराला॥
काक कंक लै भुजा उड़ाहीं। एक ते छीनि एक लै खाहीं॥1॥

भूत, पिशाच और बेताल, बड़े-बड़े झोंटों वाले महान् भयंकर झोटिंग और प्रमथ (शिवगण) उस नदी में स्नान करते हैं। कौए और चील भुजाएँ लेकर उड़ते हैं और एक-दूसरे से छीनकर खा जाते हैं॥1॥

एक कहहिं ऐसिउ सौंघाई। सठहु तुम्हार दरिद्र न जाई॥
कहँरत भट घायल तट गिरे। जहँ तहँ मनहुँ अर्धजल परे॥2॥

एक (कोई) कहते हैं, अरे मूर्खों! ऐसी सस्ती (बहुतायत) है, फिर भी तुम्हारी दरिद्रता नहीं जाती? घायल योद्धा तट पर पड़े कराह रहे हैं, मानो जहाँ-तहाँ अर्धजल (वे व्यक्ति जो मरने के समय आधे जल में रखे जाते हैं) पड़े हों॥2॥

खैचहिं गीध आँत तट भए। जनु बंसी खेलत चित दए॥
बहु भट बहहिं चढ़े खग जाहीं। जनु नावरि खेलहिं सरि माहीं॥3॥

गीध आँतें खींच रहे हैं, मानो मछली मार नदी तट पर से चित्त लगाए हुए (ध्यानस्थ होकर) बंसी खेल रहे हों (बंसी से मछली पकड़ रहे हों)। बहुत से योद्धा बहे जा रहे हैं और पक्षी उन पर चढ़े चले जा रहे हैं। मानो वे नदी में नावरि (नौका क्रीड़ा) खेल रहे हों॥3॥

जोगिनि भरि भरि खप्पर संचहिं। भूति पिसाच बधू नभ नंचहिं॥

भट कपाल करताल बजावहिं। चामुंडा नाना बिधि गावहिं॥4॥

योगिनियाँ खप्परों में भर-भरकर खून जमा कर रही हैं। भूत-पिशाचों की स्त्रियाँ आकाश में नाच रही हैं। चामुण्डाएँ योद्धाओं की खोपड़ियों का करताल बजा रही हैं और नाना प्रकार से गा रही हैं॥4॥

जंबुक निकर कटक्कट कट्टहिं। खाहिं हुआहिं अघाहिं दपट्टहिं॥
कोटिन्ह रुंड मुंड बिनु डोल्लहिं। सीस परे महि जय जय बोल्लहिं॥5॥

गीदड़ों के समूह कट-कट शब्द करते हुए मुरदों को काटते, खाते, हुआँ-हुआँ करते और पेट भर जाने पर एक-दूसरे को डाँटते हैं। करोड़ों धड़ बिना सिर के घूम रहे हैं और सिर पृथ्वी पर पड़े जय-जय बोल रहे है॥5॥

छंद :

बोल्लहिं जो जय जय मुंड रुंड प्रचंड सिर बिनु धावहीं।
खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भटन्ह ढहावहीं॥
बानर निसाचर निकर मर्दहिं राम बल दर्पित भए।
संग्राम अंगन सुभट सोवहिं राम सर निकरन्हि हए॥

मुण्ड (कटे सिर) जय-जय बोल बोलते हैं और प्रचण्ड रुण्ड (धड़) बिना सिर के दौड़ते हैं। पक्षी खोपड़ियों में उलझ-उलझकर परस्पर लड़े मरते हैं, उत्तम योद्धा दूसरे योद्धाओं को ढहा रहे हैं। श्री रामचंद्रजी बल से दर्पित हुए वानर राक्षसों के झुंडों को मसले डालते हैं। श्री रामजी के बाण समूहों से मरे हुए योद्धा लड़ाई के मैदान में सो रहे हैं।

दोहा :

रावन हृदयँ बिचारा भा निसिचर संघार।
मैं अकेल कपि भालु बहु माया करौं अपार॥88॥

रावण ने हृदय में विचारा कि राक्षसों का नाश हो गया है। मैं अकेला हूँ और वानर-भालू बहुत हैं, इसलिए मैं अब अपार माया रचूँ॥88॥

चौपाई :

देवन्ह प्रभुहि पयादें देखा। उपजा उर अति छोभ बिसेषा॥
सुरपति निज रथ तुरत पठावा। हरष सहित मातलि लै आवा॥1॥

देवताओं ने प्रभु को पैदल (बिना सवारी के युद्ध करते) देखा, तो उनके हृदय में बड़ा भारी क्षोभ (दुःख) उत्पन्न हुआ। (फिर क्या था) इंद्र ने तुरंत अपना रथ भेज दिया। (उसका सारथी) मातलि हर्ष के साथ उसे ले आया॥1॥

तेज पुंज रथ दिब्य अनूपा। हरषि चढ़े कोसलपुर भूपा॥
चंचल तुरग मनोहर चारी। अजर अमर मन सम गतिकारी॥2॥
उस दिव्य अनुपम और तेज के पुंज (तेजोमय) रथ पर कोसलपुरी के राजा श्री रामचंद्रजी हर्षित होकर चढ़े। उसमें चार चंचल, मनोहर, अजर, अमर और मन की गति के समान शीघ्र चलने वाले (देवलोक के) घोड़े जुते थे॥2॥

रथारूढ़ रघुनाथहि देखी। धाए कपि बलु पाइ बिसेषी॥
सही न जाइ कपिन्ह कै मारी। तब रावन माया बिस्तारी॥3॥
श्री रघुनाथजी को रथ पर चढ़े देखकर वानर विशेष बल पाकर दौड़े। वानरों की मार सही नहीं जाती। तब रावण ने माया फैलाई॥3॥

सो माया रघुबीरहि बाँची। लछिमन कपिन्ह सो मानी साँची॥
देखी कपिन्ह निसाचर अनी। अनुज सहित बहु कोसलधनी॥4॥
एक श्री रघुवीर के ही वह माया नहीं लगी। सब वानरों ने और लक्ष्मणजी ने भी उस माया को सच मान लिया। वानरों ने राक्षसी सेना में भाई लक्ष्मणजी सहित बहुत से रामों को देखा॥4॥

छंद :
बहु राम लछिमन देखि मर्कट भालु मन अति अपडरे।
जनु चित्र लिखित समेत लछिमन जहँ सो तहँ चितवहिं खरे॥
निज सेन चकित बिलोकि हँसि सर चाप सजि कोसलधनी।
माया हरी हरि निमिष महुँ हरषी सकल मर्कट अनी॥
बहुत से राम-लक्ष्मण देखकर वानर-भालू मन में मिथ्या डर से बहुत ही डर गए। लक्ष्मणजी सहित वे मानो चित्र लिखे से जहाँ के तहाँ खड़े देखने लगे। अपनी सेना को आश्चर्यचकित देखकर कोसलपति भगवान् हरि (दुःखों के हरने वाले श्री रामजी) ने हँसकर धनुष पर बाण चढ़ाकर, पल भर में सारी माया हर ली। वानरों की सारी सेना हर्षित हो गई।

दोहा :
बहुरि राम सब तन चितइ बोले बचन गँभीर।
द्वंदजुद्ध देखहु सकल श्रमित भए अति बीर॥89॥
फिर श्री रामजी सबकी ओर देखकर गंभीर वचन बोले- हे वीरों! तुम सब बहुत ही थक गए हो, इसलिए अब (मेरा और रावण का) द्वंद्व युद्ध देखो॥89॥

चौपाई :
अस कहि रथ रघुनाथ चलावा। बिप्र चरन पंकज सिरु नावा॥

तब लंकेस क्रोध उर छावा। गर्जत तर्जत सम्मुख धावा॥1॥

ऐसा कहकर श्री रघुनाथजी ने ब्राह्मणों के चरणकमलों में सिर नवाया और फिर रथ चलाया। तब रावण के हृदय में क्रोध छा गया और वह गरजता तथा ललकारता हुआ सामने दौड़ा॥1॥

जीतेहु जे भट संजुग माहीं। सुनु तापस मैं तिन्ह सम नाहीं॥
रावन नाम जगत जस जाना। लोकप जाकें बंदीखाना॥2॥

(उसने कहा-) अरे तपस्वी! सुनो, तुमने युद्ध में जिन योद्धाओं को जीता है, मैं उनके समान नहीं हूँ। मेरा नाम रावण है, मेरा यश सारा जगत् जानता है, लोकपाल तक जिसके कैद खाने में पड़े हैं॥2॥

खर दूषन बिराध तुम्ह मारा। बधेहु ब्याध इव बालि बिचारा॥
निसिचर निकर सुभट संघारेहु। कुंभकरन घननादहि मारेहु॥3॥

तुमने खर, दूषण और विराध को मारा! बेचारे बालि का व्याध की तरह वध किया। बड़े-बड़े राक्षस योद्धाओं के समूह का संहार किया और कुंभकर्ण तथा मेघनाद को भी मारा॥3॥

आजु बयरु सबु लेउँ निबाही। जौं रन भूप भाजि नहिं जाही॥
आजु करउँ खलु काल हवाले। परेहु कठिन रावन के पाले॥4॥

अरे राजा! यदि तुम रण से भाग न गए तो आज मैं (वह) सारा वैर निकाल लूँगा। आज मैं तुम्हें निश्चय ही काल के हवाले कर दूँगा। तुम कठिन रावण के पाले पड़े हो॥4॥

सुनि दुर्बचन कालबस जाना। बिहँसि बचन कह कृपानिधाना॥
सत्य सत्य सब तव प्रभुताई। जल्पसि जनि देखाउ मनुसाई॥5॥

रावण के दुर्वचन सुनकर और उसे कालवश जान कृपानिधान श्री रामजी ने हँसकर यह वचन कहा- तुम्हारी सारी प्रभुता, जैसा तुम कहते हो, बिल्कुल सच है। पर अब व्यर्थ बकवाद न करो, अपना पुरुषार्थ दिखलाओ॥5॥

छंद :

जनि जल्पना करि सुजसु नासहि नीति सुनहि करहि छमा।
संसार महँ पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा॥
एक सुमनप्रद एक सुमन फल एक फलइ केवल लागहीं।
एक कहहिं कहहिं करहिं अपर एक करहिं कहत न बागहीं॥

व्यर्थ बकवाद करके अपने सुंदर यश का नाश न करो। क्षमा करना, तुम्हें नीति सुनाता हूँ, सुनो! संसार में तीन प्रकार के पुरुष होते हैं- पाटल (गुलाब), आम और कटहल के समान। एक (पाटल) फूल देते हैं, एक (आम) फूल और फल दोनों देते हैं एक (कटहल) में केवल फल ही लगते हैं।

इसी प्रकार (पुरुषों में) एक कहते हैं (करते नहीं), दूसरे कहते और करते भी हैं और एक (तीसरे) केवल करते हैं, पर वाणी से कहते नहीं॥

दोहा :

राम बचन सुनि बिहँसा मोहि सिखावत ग्यान।
बयरु करत नहिं तब डरे अब लागे प्रिय प्रान॥90॥

श्री रामजी के वचन सुनकर वह खूब हँसा (और बोला-) मुझे ज्ञान सिखाते हो? उस समय वैर करते तो नहीं डरे, अब प्राण प्यारे लग रहे हैं॥90॥

चौपाई :

कहि दुर्बचन क्रुद्ध दसकंधर। कुलिस समान लाग छाँड़ै सर॥॥
नानाकार सिलीमुख धाए। दिसि अरु बिदिसि गगन महि छाए॥1॥

दुर्वचन कहकर रावण क्रुद्ध होकर वज्र के समान बाण छोड़ने लगा। अनेकों आकार के बाण दौड़े और दिशा, विदिशा तथा आकाश और पृथ्वी में, सब जगह छा गए॥1॥

पावक सर छाँड़ेउ रघुबीरा। छन महुँ जरे निसाचर तीरा॥
छाड़िसि तीब्र सक्ति खिसिआई। बान संग प्रभु फेरि चलाई॥2॥

श्री रघुवीर ने अग्निबाण छोड़ा, (जिससे) रावण के सब बाण क्षणभर में भस्म हो गए। तब उसने खिसियाकर तीक्ष्ण शक्ति छोड़ी, (किन्तु) श्री रामचंद्रजी ने उसको बाण के साथ वापस भेज दिया॥2॥

कोटिन्ह चक्र त्रिसूल पबारै। बिनु प्रयास प्रभु काटि निवारै॥
निफल होहिं रावन सर कैसें। खल के सकल मनोरथ जैसें॥3॥

वह करोड़ों चक्र और त्रिशूल चलाता है, परन्तु प्रभु उन्हें बिना ही परिश्रम काटकर हटा देते हैं। रावण के बाण किस प्रकार निष्फल होते हैं, जैसे दुष्ट मनुष्य के सब मनोरथ!॥3॥

तब सत बान सारथी मारेसि। परेउ भूमि जय राम पुकारेसि॥
राम कृपा करि सूत उठावा। तब प्रभु परम क्रोध कहुँ पावा॥4॥

तब उसने श्री रामजी के सारथी को सौ बाण मारे। वह श्री रामजी की जय पुकारकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। श्री रामजी ने कृपा करके सारथी को उठाया। तब प्रभु अत्यंत क्रोध को प्राप्त हुए॥4॥

छंद :

भए क्रुद्ध जुद्ध बिरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे।
कोदंड धुनि अति चंड सुनि मनुजाद सब मारुत ग्रसे॥
मंदोदरी उर कंप कंपति कमठ भू भूधर त्रसे।

चिक्करहिं दिग्गज दसन गहि महि देखि कौतुक सुर हँसे॥

युद्ध में शत्रु के विरुद्ध श्री रघुनाथजी क्रोधित हुए, तब तरकस में बाण कसमसाने लगे (बाहर निकलने को आतुर होने लगे)। उनके धनुष का अत्यंत प्रचण्ड शब्द (टंकार) सुनकर मनुष्यभक्षी सब राक्षस वातग्रस्त हो गए (अत्यंत भयभीत हो गए)। मंदोदरी का हृदय काँप उठा, समुद्र, कच्छप, पृथ्वी और पर्वत डर गए। दिशाओं के हाथी पृथ्वी को दाँतों से पकड़कर चिग्घाड़ने लगे। यह कौतुक देखकर देवता हँसे।

दोहा :

तानेउ चाप श्रवन लगि छाँड़े बिसिख कराल।
राम मारगन गन चले लहलहात जनु ब्याल॥91॥

धनुष को कान तक तानकर श्री रामचंद्रजी ने भयानक बाण छोड़े। श्री रामजी के बाण समूह ऐसे चले मानो सर्प लहलहाते (लहराते) हुए जा रहे हों॥91॥

चौपाई :

चले बान सपच्छ जनु उरगा। प्रथमहिं हतेउ सारथी तुरगा॥
रथ बिभंजि हति केतु पताका। गर्जा अति अंतर बल थाका॥1॥

बाण ऐसे चले मानो पंख वाले सर्प उड़ रहे हों। उन्होंने पहले सारथी और घोड़ों को मार डाला। फिर रथ को चूर-चूर करके ध्वजा और पताकाओं को गिरा दिया। तब रावण बड़े जोर से गरजा, पर भीतर से उसका बल थक गया था॥1॥

तुरत आन रथ चढ़ि खिसिआना। अस्त्र सस्त्र छाँड़ेसि बिधि नाना॥
बिफल होहिं सब उद्यम ताके। जिमि परद्रोह निरत मनसा के॥2॥

तुरंत दूसरे रथ पर चढ़कर खिसियाकर उसने नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र छोड़े। उसके सब उद्योग वैसे ही निष्फल हो गए, जैसे परद्रोह में लगे हुए चित्त वाले मनुष्य के होते हैं॥2॥

तब रावन दस सूल चलावा। बाजि चारि महि मारि गिरावा॥
तुरग उठाइ कोपि रघुनायक। खैंचि सरासन छाँड़े सायक॥3॥

तब रावण ने दस त्रिशूल चलाए और श्री रामजी के चारों घोड़ों को मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया। घोड़ों को उठाकर श्री रघुनाथजी ने क्रोध करके धनुष खींचकर बाण छोड़े॥3॥

रावन सिर सरोज बनचारी। चलि रघुबीर सिलीमुख धारी॥
दस दस बान भाल दस मारे। निसरि गए चले रुधिर पनारे॥4॥

रावण के सिर रूपी कमल वन में विचरण करने वाले श्री रघुवीर के बाण रूपी भ्रमरों की पंक्ति चली। श्री रामचंद्रजी ने उसके दसों सिरों में दस-दस बाण मारे, जो आर-पार हो गए और सिरों

से रक्त के पनाले बह चले॥4॥

स्रवत रुधिर धायउ बलवाना। प्रभु पुनि कृत धनु सर संधाना॥
तीस तीर रघुबीर पबारे। भुजन्हि समेत सीस महि पारे॥5॥

रुधिर बहते हुए ही बलवान् रावण दौड़ा। प्रभु ने फिर धनुष पर बाण संधान किया। श्री रघुवीर ने तीस बाण मारे और बीसों भुजाओं समेत दसों सिर काटकर पृथ्वी पर गिरा दिए॥5॥

काटतहीं पुनि भए नबीने। राम बहोरि भुजा सिर छीने॥
प्रभु बहु बार बाहु सिर हए। कटत झटिति पुनि नूतन भए॥6॥

(सिर और हाथ) काटते ही फिर नए हो गए। श्री रामजी ने फिर भुजाओं और सिरों को काट गिराया। इस तरह प्रभु ने बहुत बार भुजाएँ और सिर काटे, परन्तु काटते ही वे तुरंत फिर नए हो गए॥6॥

पुनि पुनि प्रभु काटत भुज सीसा। अति कौतुकी कोसलाधीसा॥
रहे छाइ नभ सिर अरु बाहू। मानहुँ अमित केतु अरु राहू॥7॥

प्रभु बार-बार उसकी भुजा और सिरों को काट रहे हैं, क्योंकि कोसलपति श्री रामजी बड़े कौतुकी हैं। आकाश में सिर और बाहु ऐसे छा गए हैं, मानो असंख्य केतु और राहु हों॥7॥

छंद :

जनु राहु केतु अनेक नभ पथ स्रवत सोनित धावहीं।
रघुबीर तीर प्रचंड लागहिं भूमि गिरत न पावहीं॥
एक एक सर सिर निकर छेदे नभ उड़त इमि सोहहीं।
जनु कोपि दिनकर कर निकर जहँ तहँ बिधुंतुद पोहहीं॥

मानो अनेकों राहु और केतु रुधिर बहाते हुए आकाश मार्ग से दौड़ रहे हों। श्री रघुवीर के प्रचण्ड बाणों के (बार-बार) लगने से वे पृथ्वी पर गिरने नहीं पाते। एक-एक बाण से समूह के समूह सिर छिदे हुए आकाश में उड़ते ऐसे शोभा दे रहे हैं मानो सूर्य की किरणें क्रोध करके जहाँ-तहाँ राहुओं को पिरो रही हों।

दोहा :

जिमि जिमि प्रभु हर तासु सिर तिमि होहिं अपार।
सेवत बिषय बिबर्ध जिमि नित नित नूतन मार॥92॥

जैसे-जैसे प्रभु उसके सिरों को काटते हैं, वैसे ही वैसे वे अपार होते जाते हैं। जैसे विषयों का सेवन करने से काम (उन्हें भोगने की इच्छा) दिन-प्रतिदिन नया-नया बढ़ता जाता है॥92॥

चौपाई :

दसमुख देखि सिरन्ह कै बाढ़ी। बिसरा मरन भई रिस गाढ़ी॥
गर्जेउ मूढ़ महा अभिमानी। धायउ दसहु सरासन तानी॥1॥

सिरों की बाढ़ देखकर रावण को अपना मरण भूल गया और बड़ा गहरा क्रोध हुआ। वह महान् अभिमानी मूर्ख गरजा और दसों धनुषों को तानकर दौड़ा॥1॥

समर भूमि दसकंधर कोप्यो। बरषि बान रघुपति रथ तोप्यो॥
दंड एक रथ देखि न परेउ। जनु निहार महुँ दिनकर दुरेऊ॥2॥

रणभूमि में रावण ने क्रोध किया और बाण बरसाकर श्री रघुनाथजी के रथ को ढँक दिया। एक दण्ड (घड़ी) तक रथ दिखलाई न पड़ा, मानो कुहरे में सूर्य छिप गया हो॥2॥

हाहाकार सुरन्ह जब कीन्हा। तब प्रभु कोपि कारमुक लीन्हा॥
सर निवारि रिपु के सिर काटे। ते दिसि बिदिसि गगन महि पाटे॥3॥

जब देवताओं ने हाहाकार किया, तब प्रभु ने क्रोध करके धनुष उठाया और शत्रु के बाणों को हटाकर उन्होंने शत्रु के सिर काटे और उनसे दिशा, विदिशा, आकाश और पृथ्वी सबको पाट दिया॥3॥

काटे सिर नभ मारग धावहिं। जय जय धुनि करि भय उपजावहिं॥
कहँ लछिमन सुग्रीव कपीसा। कहँ रघुबीर कोसलाधीसा॥4॥

काटे हुए सिर आकाश मार्ग से दौड़ते हैं और जय-जय की ध्वनि करके भय उत्पन्न करते हैं। 'लक्ष्मण और वानरराज सुग्रीव कहाँ हैं? कोसलपति रघुवीर कहाँ हैं?'॥4॥

छंद :

कहँ रामु कहि सिर निकर धाए देखि मर्कट भजि चले।
संधानि धनु रघुबंसमनि हँसि सरन्हि सिर बेधे भले॥
सिर मालिका कर कालिका गहि बृंद बृंदन्हि बहु मिलीं।
करि रुधिर सरि मज्जनु मनहुँ संग्राम बट पूजन चलीं॥

'राम कहाँ हैं?' यह कहकर सिरों के समूह दौड़े, उन्हें देखकर वानर भाग चले। तब धनुष सन्धान करके रघुकुलमणि श्री रामजी ने हँसकर बाणों से उन सिरों को भलीभाँति बेध डाला। हाथों में मुण्डों की मालाएँ लेकर बहुत सी कालिकाएँ झुंड की झुंड मिलकर इकट्ठी हुईं और वे रुधिर की नदी में स्नान करके चलीं। मानो संग्राम रूपी वटवृक्ष की पूजा करने जा रही हों।

दोहा :

पुनि दसकंठ क्रुद्ध होइ छाँड़ी सक्ति प्रचंड।
चली बिभीषन सन्मुख मनहुँ काल कर दंड॥93॥

फिर रावण ने क्रोधित होकर प्रचण्ड शक्ति छोड़ी। वह विभीषण के सामने ऐसी चली जैसे काल (यमराज) का दण्ड हो॥93॥

चौपाई :

आवत देखि सक्ति अति घोरा। प्रनतारति भंजन पन मोरा॥
तुरत बिभीषन पाछें मेला। सन्मुख राम सहेउ सोइ सेला॥1॥

अत्यंत भयानक शक्ति को आती देख और यह विचार कर कि मेरा प्रण शरणागत के दुःख का नाश करना है, श्री रामजी ने तुरंत ही विभीषण को पीछे कर लिया और सामने होकर वह शक्ति स्वयं सह ली॥1॥

लागि सक्ति मुरुछा कछु भई। प्रभु कृत खेल सुरन्ह बिकलई॥
देखि बिभीषन प्रभु श्रम पायो। गहि कर गदा क्रुद्ध होइ धायो॥2॥

शक्ति लगने से उन्हें कुछ मूर्छा हो गई। प्रभु ने तो यह लीला की, पर देवताओं को व्याकुलता हुई। प्रभु को श्रम (शारीरिक कष्ट) प्राप्त हुआ देखकर विभीषण क्रोधित हो हाथ में गदा लेकर दौड़े॥2॥

रे कुभाग्य सठ मंद कुबुद्धे। तैं सुर नर मुनि नाग बिरुद्धे॥
सादर सिव कहुँ सीस चढ़ाए। एक एक के कोटिन्ह पाए॥3॥

(और बोले-) अरे अभागे! मूर्ख, नीच दुर्बुद्धि! तूने देवता, मनुष्य, मुनि, नाग सभी से विरोध किया। तूने आदर सहित शिवजी को सिर चढ़ाए। इसी से एक-एक के बदले में करोड़ों पाए॥3॥

तेहि कारन खल अब लगि बाँच्यो। अब तव कालु सीस पर नाच्यो॥
राम बिमुख सठ चहसि संपदा। अस कहि हनेसि माझ उर गदा॥4॥

उसी कारण से अरे दुष्ट! तू अब तक बचा है, (किन्तु) अब काल तेरे सिर पर नाच रहा है। अरे मूर्ख! तू राम विमुख होकर सम्पत्ति (सुख) चाहता है? ऐसा कहकर विभीषण ने रावण की छाती के बीचों-बीच गदा मारी॥4॥

छंद :

उर माझ गदा प्रहार घोर कठोर लागत महि पर्‌यो।
दस बदन सोनित स्रवत पुनि संभारि धायो रिस भर्‌यो॥
द्वौ भिरे अतिबल मल्लजुद्ध बिरुद्ध एकु एकहि हनै।
रघुबीर बल दर्पित बिभीषनु घालि नहिं ता कहुँ गनै॥

बीच छाती में कठोर गदा की घोर और कठिन चोट लगते ही वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसके दसों मुखों से रुधिर बहने लगा, वह अपने को फिर संभालकर क्रोध में भरा हुआ दौड़ा। दोनों

अत्यंत बलवान् योद्धा भिड़ गए और मल्लयुद्ध में एक-दूसरे के विरुद्ध होकर मारने लगे। श्री रघुवीर के बल से गर्वित विभीषण उसको (रावण जैसे जगद्विजयी योद्धा को) पासंग के बराबर भी नहीं समझते।

दोहा :

उमा बिभीषनु रावनहि सन्मुख चितव कि काउ।
सो अब भिरत काल ज्यों श्री रघुबीर प्रभाउ॥94॥

(शिवजी कहते हैं-) हे उमा! विभीषण क्या कभी रावण के सामने आँख उठाकर भी देख सकता था? परन्तु अब वही काल के समान उससे भिड़ रहा है। यह श्री रघुवीर का ही प्रभाव है॥94॥

चौपाई :

देखा श्रमित बिभीषनु भारी। धायउ हनूमान गिरि धारी॥
रथ तुरंग सारथी निपाता। हृदय माझ तेहि मारेसि लाता॥1॥

विभीषण को बहुत ही थका हुआ देखकर हनुमान्‌जी पर्वत धारण किए हुए दौड़े। उन्होंने उस पर्वत से रावण के रथ, घोड़े और सारथी का संहार कर डाला और उसके सीने पर लात मारी॥1॥

ठाढ़ रहा अति कंपित गाता। गयउ बिभीषनु जहँ जनत्राता॥
पुनि रावन कपि हतेउ पचारी। चलेउ गगन कपि पूँछ पसारी॥2॥

रावण खड़ा रहा, पर उसका शरीर अत्यंत काँपने लगा। विभीषण वहाँ गए, जहाँ सेवकों के रक्षक श्री रामजी थे। फिर रावण ने ललकारकर हनुमान्‌जी को मारा। वे पूँछ फैलाकर आकाश में चले गए॥2॥

गहिसि पूँछ कपि सहित उड़ाना। पुनि फिरि भिरेउ प्रबल हनुमाना॥
लरत अकास जुगल सम जोधा। एकहि एकु हनत करि क्रोधा॥3॥

रावण ने पूँछ पकड़ ली, हनुमान्‌जी उसको साथ लिए ऊपर उड़े। फिर लौटकर महाबलवान् हनुमान्‌जी उससे भिड़ गए। दोनों समान योद्धा आकाश में लड़ते हुए एक-दूसरे को क्रोध करके मारने लगे॥3॥

सोहहिं नभ छल बल बहु करहीं। कज्जलगिरि सुमेरु जनु लरहीं॥
बुधि बल निसिचर परइ न पारयो। तब मारुतसुत प्रभु संभार्‌यो॥4॥

दोनों बहुत से छल-बल करते हुए आकाश में ऐसे शोभित हो रहे हैं मानो कज्जलगिरि और सुमेरु पर्वत लड़ रहे हों। जब बुद्धि और बल से राक्षस गिराए न गिरा तब मारुति श्री हनुमान्‌जी ने प्रभु को स्मरण किया॥4॥

छंद :

संभारि श्रीरघुबीर धीर पचारि कपि रावनु हन्यो।
महि परत पुनि उठि लरत देवन्ह जुगल कहुँ जय जय भन्यो॥
हनुमंत संकट देखि मर्कट भालु क्रोधातुर चले।
रन मत्त रावन सकल सुभट प्रचण्ड भुज बल दलमले॥

श्री रघुवीर का स्मरण करके धीर हनुमान्‌जी ने ललकारकर रावण को मारा। वे दोनों पृथ्वी पर गिरते और फिर उठकर लड़ते हैं, देवताओं ने दोनों की 'जय-जय' पुकारी। हनुमान्‌जी पर संकट देखकर वानर-भालू क्रोधातुर होकर दौड़े, किन्तु रण-मद-माते रावण ने सब योद्धाओं को अपनी प्रचण्ड भुजाओं के बल से कुचल और मसल डाला।

दोहा :

तब रघुबीर पचारे धाए कीस प्रचंड।
कपि बल प्रबल देखि तेहिं कीन्ह प्रगट पाषंड॥95॥

तब श्री रघुवीर के ललकारने पर प्रचण्ड वीर वानर दौड़े। वानरों के प्रबल दल को देखकर रावण ने माया प्रकट की॥95॥

चौपाई :

अंतरधान भयउ छन एका। पुनि प्रगटे खल रूप अनेका॥
रघुपति कटक भालु कपि जेते। जहँ तहँ प्रगट दसानन तेते॥1॥

क्षणभर के लिए वह अदृश्य हो गया। फिर उस दुष्ट ने अनेकों रूप प्रकट किए। श्री रघुनाथजी की सेना में जितने रीछ-वानर थे, उतने ही रावण जहाँ-तहाँ (चारों ओर) प्रकट हो गए॥1॥

देखे कपिन्ह अमित दससीसा। जहँ तहँ भजे भालु अरु कीसा॥
भागे बानर धरहिं न धीरा। त्राहि त्राहि लछिमन रघुबीरा॥2॥

वानरों ने अपरिमित रावण देखे। भालू और वानर सब जहाँ-तहाँ (इधर-उधर) भाग चले। वानर धीरज नहीं धरते। हे लक्ष्मणजी! हे रघुवीर! बचाइए, बचाइए, यों पुकारते हुए वे भागे जा रहे हैं॥2॥

दहँ दिसि धावहिं कोटिन्ह रावन। गर्जहिं घोर कठोर भयावन॥
डरे सकल सुर चले पराई। जय कै आस तजहु अब भाई॥3॥

दसों दिशाओं में करोड़ों रावण दौड़ते हैं और घोर, कठोर भयानक गर्जन कर रहे हैं। सब देवता डर गए और ऐसा कहते हुए भाग चले कि हे भाई! अब जय की आशा छोड़ दो!॥3॥

सब सुर जिते एक दसकंधर। अब बहु भए तकहु गिरि कंदर॥

रहे बिरंचि संभु मुनि ग्यानी। जिन्ह जिन्ह प्रभु महिमा कछु जानी॥4॥

एक ही रावण ने सब देवताओं को जीत लिया था, अब तो बहुत से रावण हो गए हैं। इससे अब पहाड़ की गुफाओं का आश्रय लो (अर्थात् उनमें छिप रहो)। वहाँ ब्रह्मा, शम्भु और ज्ञानी मुनि ही डटे रहे, जिन्होंने प्रभु की कुछ महिमा जानी थी॥4॥

छंद :

जाना प्रताप ते रहे निर्भय कपिन्ह रिपु माने फुरे।
चले बिचलि मर्कट भालु सकल कृपाल पाहि भयातुरे॥
हनुमंत अंगद नील नल अतिबल लरत रन बाँकुरे।
मर्दहिं दसानन कोटि कोटिन्ह कपट भू भट अंकुरे॥

जो प्रभु का प्रताप जानते थे, वे निर्भय डटे रहे। वानरों ने शत्रुओं (बहुत से रावणों) को सच्चा ही मान लिया। (इससे) सब वानर-भालू विचलित होकर 'हे कृपालु! रक्षा कीजिए' (यों पुकारते हुए) भय से व्याकुल होकर भाग चले। अत्यंत बलवान् रणबाँकुरे हनुमान्‌जी, अंगद, नील और नल लड़ते हैं और कपट रूपी भूमि से अंकुर की भाँति उपजे हुए कोटि-कोटि योद्धा रावणों को मसलते हैं।

दोहा :

सुर बानर देखे बिकल हँस्यो कोसलाधीस।
सजि सारंग एक सर हते सकल दससीस॥96॥

देवताओं और वानरों को विकल देखकर कोसलपति श्री रामजी हँसे और शार्ङ्ग धनुष पर एक बाण चढ़ाकर (माया के बने हुए) सब रावणों को मार डाला॥96॥

चौपाई :

प्रभु छन महुँ माया सब काटी। जिमि रबि उएँ जाहिं तम फाटी॥
रावनु एकु देखि सुर हरषे। फिरे सुमन बहु प्रभु पर बरषे॥1॥

प्रभु ने क्षणभर में सब माया काट डाली। जैसे सूर्य के उदय होते ही अंधकार की राशि फट जाती है (नष्ट हो जाती है)। अब एक ही रावण को देखकर देवता हर्षित हुए और उन्होंने लौटकर प्रभु पर बहुत से पुष्प बरसाए॥1॥

भुज उठाइ रघुपति कपि फेरे। फिरे एक एकन्ह तब टेरे॥
प्रभु बलु पाइ भालु कपि धाए। तरल तमकि संजुग महि आए॥2॥

श्री रघुनाथजी ने भुजा उठाकर सब वानरों को लौटाया। तब वे एक-दूसरे को पुकार-पुकार कर लौट आए। प्रभु का बल पाकर रीछ-वानर दौड़ पड़े। जल्दी से कूदकर वे रणभूमि में आ गए॥2॥

अस्तुति करत देवतन्हि देखें। भयउँ एक मैं इन्ह के लेखें॥

सठहु सदा तुम्ह मोर मरायल। अस कहि कोपि गगन पर धायल॥3॥

देवताओं को श्री रामजी की स्तुति करते देख कर रावण ने सोचा, मैं इनकी समझ में एक हो गया, (परन्तु इन्हें यह पता नहीं कि इनके लिए मैं एक ही बहुत हूँ) और कहा- अरे मूर्खों! तुम तो सदा के ही मेरे मरैल (मेरी मार खाने वाले) हो। ऐसा कहकर वह क्रोध करके आकाश पर (देवताओं की ओर) दौड़ा॥3॥

चौपाई :

हाहाकार करत सुर भागे। खलहु जाहु कहँ मोरें आगे॥
देखि बिकल सुर अंगद धायो। कूदि चरन गहि भूमि गिरायो॥4॥

देवता हाहाकार करते हुए भागे। (रावण ने कहा-) दुष्टों! मेरे आगे से कहाँ जा सकोगे? देवताओं को व्याकुल देखकर अंगद दौड़े और उछलकर रावण का पैर पकड़कर (उन्होंने) उसको पृथ्वी पर गिरा दिया॥4॥

छंद :

गहि भूमि पार्‌यो लात मार्‌यो बालिसुत प्रभु पहिं गयो।
संभारि उठि दसकंठ घोर कठोर रव गर्जत भयो॥
करि दाप चाप चढ़ाइ दस संधानि सर बहु बरषई।
किए सकल भट घायल भयाकुल देखि निज बल हरषई॥

उसे पकड़कर पृथ्वी पर गिराकर लात मारकर बालिपुत्र अंगद प्रभु के पास चले गए। रावण संभलकर उठा और बड़े भंयकर कठोर शब्द से गरजने लगा। वह दर्प करके दसों धनुष चढ़ाकर उन पर बहुत से बाण संधान करके बरसाने लगा। उसने सब योद्धाओं को घायल और भय से व्याकुल कर दिया और अपना बल देखकर वह हर्षित होने लगा।

दोहा :

तब रघुपति रावन के सीस भुजा सर चाप।
काटे बहुत बढ़े पुनि जिमि तीरथ कर पाप॥97॥

तब श्री रघुनाथजी ने रावण के सिर, भुजाएँ, बाण और धनुष काट डाले। पर वे फिर बहुत बढ़ गए, जैसे तीर्थ में किए हुए पाप बढ़ जाते हैं (कई गुना अधिक भयानक फल उत्पन्न करते हैं)!॥97॥

चौपाई :

सिर भुज बाढ़ि देखि रिपु केरी। भालु कपिन्ह रिस भई घनेरी॥
मरत न मूढ़ कटेहुँ भुज सीसा। धाए कोपि भालु भट कीसा॥1॥

शत्रु के सिर और भुजाओं की बढ़ती देखकर रीछ-वानरों को बहुत ही क्रोध हुआ। यह मूर्ख भुजाओं के और सिरों के कटने पर भी नहीं मरता, (ऐसा कहते हुए) भालू और वानर योद्धा क्रोध करके दौड़े॥1॥

बालितनय मारुति नल नीला। बानरराज दुबिद बलसीला॥
बिटप महीधर करहिं प्रहारा। सोइ गिरि तरु गहि कपिन्ह सो मारा॥2॥

बालिपुत्र अंगद, मारुति हनुमान्‌जी, नल, नील, वानरराज सुग्रीव और द्विविद आदि बलवान् उस पर वृक्ष और पर्वतों का प्रहार करते हैं। वह उन्हीं पर्वतों और वृक्षों को पकड़कर वानरों को मारता है॥2॥

एक नखन्हि रिपु बपुष बिदारी। भागि चलहिं एक लातन्ह मारी।
तब नल नील सिरन्हि चढ़ि गयऊ। नखन्हि लिलार बिदारत भयऊ॥3॥

कोई एक वानर नखों से शत्रु के शरीर को फाड़कर भाग जाते हैं, तो कोई उसे लातों से मारकर। तब नल और नील रावण के सिरों पर चढ़ गए और नखों से उसके ललाट को फाड़ने लगे॥3॥

रुधिर देखि बिषाद उर भारी। तिन्हहि धरन कहुँ भुजा पसारी॥
गहे न जाहिं करन्हि पर फिरहीं। जनु जुग मधुप कमल बन चरहीं॥4॥

खून देखकर उसे हृदय में बड़ा दुःख हुआ। उसने उनको पकड़ने के लिए हाथ फैलाए, पर वे पकड़ में नहीं आते, हाथों के ऊपर-ऊपर ही फिरते हैं मानो दो भौंरे कमलों के वन में विचरण कर रहे हों॥4॥

कोपि कूदि द्वौ धरेसि बहोरी। महि पटकत भजे भुजा मरोरी॥
पुनि सकोप दस धनु कर लीन्हे। सरन्हि मारि घायल कपि कीन्हे॥5॥

तब उसने क्रोध करके उछलकर दोनों को पकड़ लिया। पृथ्वी पर पटकते समय वे उसकी भुजाओं को मरोड़कर भाग छूटे। फिर उसने क्रोध करके हाथों में दसों धनुष लिए और वानरों को बाणों से मारकर घायल कर दिया॥5॥

हनुमदादि मुरुछित करि बंदर। पाइ प्रदोष हरष दसकंधर॥
मुरुछित देखि सकल कपि बीरा। जामवंत धायउ रनधीरा॥6॥

हनुमान्‌जी आदि सब वानरों को मूर्च्छित करके और संध्या का समय पाकर रावण हर्षित हुआ। समस्त वानर-वीरों को मूर्च्छित देखकर रणधीर जाम्बवत् दौड़े॥6॥

संग भालु भूधर तरु धारी। मारन लगे पचारि पचारी॥
भयउ क्रुद्ध रावन बलवाना। गहि पद महि पटकइ भट नाना॥7॥

जाम्बवान् के साथ जो भालू थे, वे पर्वत और वृक्ष धारण किए रावण को ललकार-ललकार कर

मारने लगे। बलवान् रावण क्रोधित हुआ और पैर पकड़-पकड़कर वह अनेकों योद्धाओं को पृथ्वी पर पटकने लगा॥7॥

देखि भालुपति निज दल घाता। कोपि माझ उर मारेसि लाता॥8॥
जाम्बवान् ने अपने दल का विध्वंस देखकर क्रोध करके रावण की छाती में लात मारी॥8॥

छंद :

उर लात घात प्रचंड लागत बिकल रथ ते महि परा।
गहि भालु बीसहुँ कर मनहुँ कमलन्हि बसे निसि मधुकरा॥
मुरुछित बिलोकि बहोरि पद हति भालुपति प्रभु पहिं गयो॥
निसि जानि स्यंदन घालि तेहि तब सूत जतनु करय भयो॥

छाती में लात का प्रचण्ड आघात लगते ही रावण व्याकुल होकर रथ से पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसने बीसों हाथों में भालुओं को पकड़ रखा था। (ऐसा जान पड़ता था) मानो रात्रि के समय भौंरे कमलों में बसे हुए हों। उसे मूर्च्छित देखकर, फिर लात मारकर ऋक्षराज जाम्बवान् प्रभु के पास चले। रात्रि जानकर सारथी रावण को रथ में डालकर उसे होश में लाने का उपाय करने लगा॥

दोहा :

मुरुछा बिगत भालु कपि सब आए प्रभु पास।
निसिचर सकल रावनहि घेरि रहे अति त्रास॥98॥
मूर्च्छा दूर होने पर सब रीछ-वानर प्रभु के पास आए। उधर सब राक्षसों ने बहुत ही भयभीत होकर रावण को घेर लिया॥98॥

मासपारायण, छब्बीसवाँ विश्राम

चौपाई :

तेही निसि सीता पहिं जाई। त्रिजटा कहि सब कथा सुनाई॥
सिर भुज बाढ़ि सुनत रिपु केरी। सीता उर भइ त्रास घनेरी॥1॥
उसी रात त्रिजटा ने सीताजी के पास जाकर उन्हें सब कथा कह सुनाई। शत्रु के सिर और भुजाओं की बढ़ती का संवाद सुनकर सीताजी के हृदय में बड़ा भय हुआ॥1॥

मुख मलीन उपजी मन चिंता। त्रिजटा सन बोली तब सीता॥
होइहि कहा कहसि किन माता। केहि बिधि मरिहि बिस्व दुखदाता॥2॥
(उनका) मुख उदास हो गया, मन में चिंता उत्पन्न हो गई। तब सीताजी त्रिजटा से बोलीं- हे माता! बताती क्यों नहीं? क्या होगा? संपूर्ण विश्व को दुःख देने वाला यह किस प्रकार मरेगा?॥2॥

रघुपति सर सिर कटेहुँ न मरई। बिधि बिपरीत चरित सब करई॥
मोर अभाग्य जिआवत ओही। जेहिं हौं हरि पद कमल बिछोही॥3॥

श्री रघुनाथजी के बाणों से सिर कटने पर भी नहीं मरता। विधाता सारे चरित्र विपरीत (उलटे) ही कर रहा है। (सच बात तो यह है कि) मेरा दुर्भाग्य ही उसे जिला रहा है, जिसने मुझे भगवान् के चरणकमलों से अलग कर दिया है॥3॥

जेहिं कृत कपट कनक मृग झूठा। अजहुँ सो दैव मोहि पर रूठा॥
जेहिं बिधि मोहि दुख दुसह सहाए। लछिमन कहुँ कटु बचन कहाए॥4॥

जिसने कपट का झूठा स्वर्ण मृग बनाया था, वही दैव अब भी मुझ पर रूठा हुआ है, जिस विधाता ने मुझसे दुःसह दुःख सहन कराए और लक्ष्मण को कड़ुवे वचन कहलाए,॥4॥

रघुपति बिरह सबिष सर भारी। तकि तकि मार बार बहु मारी॥
ऐसेहुँ दुख जो राख मम प्राना। सोइ बिधि ताहि जिआव न आना॥5॥

जो श्री रघुनाथजी के विरह रूपी बड़े विषैले बाणों से तक-तककर मुझे बहुत बार मारकर, अब भी मार रहा है और ऐसे दुःख में भी जो मेरे प्राणों को रख रहा है, वही विधाता उस (रावण) को जिला रहा है, दूसरा कोई नहीं॥5॥

बहु बिधि कर बिलाप जानकी। करि करि सुरति कृपानिधान की॥
कह त्रिजटा सुनु राजकुमारी। उर सर लागत मरइ सुरारी॥6॥

कृपानिधान श्री रामजी की याद कर-करके जानकीजी बहुत प्रकार से विलाप कर रही हैं। त्रिजटा ने कहा- हे राजकुमारी! सुनो, देवताओं का शत्रु रावण हृदय में बाण लगते ही मर जाएगा॥6॥

प्रभु ताते उर हतइ न तेही। एहि के हृदयँ बसति बैदेही॥7॥

परन्तु प्रभु उसके हृदय में बाण इसलिए नहीं मारते कि इसके हृदय में जानकीजी (आप) बसती हैं॥7॥

छंद :

एहि के हृदयँ बस जानकी जानकी उर मम बास है।
मम उदर भुअन अनेक लागत बान सब कर नास है॥
सुनि बचन हरष बिषाद मन अति देखि पुनि त्रिजटाँ कहा।
अब मरिहि रिपु एहि बिधि सुनहि सुंदरि तजहि संसय महा॥

वे यही सोचकर रह जाते हैं कि) इसके हृदय में जानकी का निवास है, जानकी के हृदय में मेरा निवास है और मेरे उदर में अनेकों भुवन हैं। अतः रावण के हृदय में बाण लगते ही सब भुवनों का नाश हो जाएगा। यह वचन सुनकर सीताजी के मन में अत्यंत हर्ष और विषाद हुआ देखकर

त्रिजटा ने फिर कहा- हे सुंदरी! महान् संदेह का त्याग कर दो, अब सुनो, शत्रु इस प्रकार मरेगा-

दोहा :

काटत सिर होइहि बिकल छुटि जाइहि तव ध्यान।
तब रावनहि हृदय महुँ मरिहहिं रामु सुजान॥99॥

सिरों के बार-बार काटे जाने से जब वह व्याकुल हो जाएगा और उसके हृदय से तुम्हारा ध्यान छूट जाएगा, तब सुजान (अंतर्यामी) श्री रामजी रावण के हृदय में बाण मारेंगे॥99॥

चौपाई :

अस कहि बहुत भाँति समुझाई। पुनि त्रिजटा निज भवन सिधाई॥
राम सुभाउ सुमिरि बैदेही। उपजी बिरह बिथा अति तेही॥1॥

ऐसा कहकर और सीताजी को बहुत प्रकार से समझाकर फिर त्रिजटा अपने घर चली गई। श्री रामचंद्रजी के स्वभाव का स्मरण करके जानकीजी को अत्यंत विरह व्यथा उत्पन्न हुई॥1॥

निसिहि ससिहि निंदति बहु भाँति। जुग सम भई सिराति न राती॥
करति बिलाप मनहिं मन भारी। राम बिरहँ जानकी दुखारी॥2॥

वे रात्रि की और चंद्रमा की बहुत प्रकार से निंदा कर रही हैं (और कह रही हैं-) रात युग के समान बड़ी हो गई, वह बीतती ही नहीं। जानकीजी श्री रामजी के विरह में दुःखी होकर मन ही मन भारी विलाप कर रही हैं॥2॥

जब अति भयउ बिरह उर दाहू। फरकेउ बाम नयन अरु बाहू॥
सगुन बिचारि धरी मन धीरा। अब मिलिहहिं कृपाल रघुबीरा॥3॥

जब विरह के मारे हृदय में दारुण दाह हो गया, तब उनका बायाँ नेत्र और बाहु फड़क उठे। शकुन समझकर उन्होंने मन में धैर्य धारण किया कि अब कृपालु श्री रघुवीर अवश्य मिलेंगे॥3॥

इहाँ अर्धनिसि रावनु जागा। निज सारथि सन खीझन लागा।
सठ रनभूमि छड़ाइसि मोही। धिग धिग अधम मंदमति तोही॥4॥

यहाँ आधी रात को रावण (मूर्च्छा से) जागा और अपने सारथी पर रुष्ट होकर कहने लगा- अरे मूर्ख! तूने मुझे रणभूमि से अलग कर दिया। अरे अधम! अरे मंदबुद्धि! तुझे धिक्कार है, धिक्कार है!॥4॥

तेहिं पद गहि बहु बिधि समुझावा। भोरु भएँ रथ चढ़ि पुनि धावा॥
सुनि आगवनु दसानन केरा। कपि दल खरभर भयउ घनेरा॥5॥

सारथि ने चरण पकड़कर रावण को बहुत प्रकार से समझाया। सबेरा होते ही वह रथ पर चढ़कर फिर दौड़ा। रावण का आना सुनकर वानरों की सेना में बड़ी खलबली मच गई॥5॥

जहँ तहँ भूधर बिटप उपारी। धाए कटकटाइ भट भारी॥6॥

वे भारी योद्धा जहाँ-तहाँ से पर्वत और वृक्ष उखाड़कर (क्रोध से) दाँत कटकटाकर दौड़े॥6॥

छंद :

धाए जो मर्कट बिकट भालु कराल कर भूधर धरा।
अति कोप करहिं प्रहार मारत भजि चले रजनीचरा॥
बिचलाइ दल बलवंत कीसन्ह घेरि पुनि रावनु लियो।
चहुँ दिसि चपेटन्हि मारि नखन्हि बिदारि तन ब्याकुल कियो॥

विकट और विकराल वानर-भालू हाथों में पर्वत लिए दौड़े। वे अत्यंत क्रोध करके प्रहार करते हैं। उनके मारने से राक्षस भाग चले। बलवान् वानरों ने शत्रु की सेना को विचलित करके फिर रावण को घेर लिया। चारों ओर से चपेटे मारकर और नखों से शरीर विदीर्ण कर वानरों ने उसको व्याकुल कर दिया॥

दोहा :

देखि महा मर्कट प्रबल रावन कीन्ह बिचार।
अंतरहित होइ निमिष महुँ कृत माया बिस्तार॥100॥

वानरों को बड़ा ही प्रबल देखकर रावण ने विचार किया और अंतर्धान होकर क्षणभर में उसने माया फैलाई॥100॥

छंद :

जब कीन्ह तेहिं पाषंड। भए प्रगट जंतु प्रचंड॥
बेताल भूत पिसाच। कर धरें धनु नाराच॥1॥

जब उसने पाखंड (माया) रचा, तब भयंकर जीव प्रकट हो गए। बेताल, भूत और पिशाच हाथों में धनुष-बाण लिए प्रकट हुए!॥1॥

जोगिनि गहें करबाल। एक हाथ मनुज कपाल॥
करि सद्य सोनित पान। नाचहिं करहिं बहु गान॥2॥

योगिनियाँ एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में मनुष्य की खोपड़ी लिए ताजा खून पीकर नाचने और बहुत तरह के गीत गाने लगीं॥2॥

धरु मारु बोलहिं घोर। रहि पूरि धुनि चहुँ ओर॥
मुख बाइ धावहिं खान। तब लगे कीस परान॥3॥

वे 'पकड़ो, मारो' आदि घोर शब्द बोल रही हैं। चारों ओर (सब दिशाओं में) यह ध्वनि भर गई। वे मुख फैलाकर खाने दौड़ती हैं। तब वानर भागने लगे॥3॥

जहँ जाहिं मर्कट भागि। तहँ बरत देखहिं आगि॥
भए बिकल बानर भालु। पुनि लाग बरषै बालु॥4॥
वानर भागकर जहाँ भी जाते हैं, वहीं आग जलती देखते हैं। वानर-भालू व्याकुल हो गए। फिर रावण बालू बरसाने लगा॥4॥

जहँ तहँ थकित करि कीस। गर्जेउ बहुरि दससीस॥
लछिमन कपीस समेत। भए सकल बीर अचेत॥5॥
वानरों को जहाँ-तहाँ थकित (शिथिल) कर रावण फिर गरजा। लक्ष्मणजी और सुग्रीव सहित सभी वीर अचेत हो गए॥5॥

हा राम हा रघुनाथ। कहि सुभट मीजहिं हाथ॥
ऐहि बिधि सकल बल तोरि। तेहिं कीन्ह कपट बहोरि॥6॥
हा राम! हा रघुनाथ पुकारते हुए श्रेष्ठ योद्धा अपने हाथ मलते (पछताते) हैं। इस प्रकार सब का बल तोड़कर रावण ने फिर दूसरी माया रची॥6॥

प्रगटेसि बिपुल हनुमान। धाए गहे पाषान॥
तिन्ह रामु घेरे जाइ। चहुँ दिसि बरूथ बनाइ॥7॥
उसने बहुत से हनुमान् प्रकट किए, जो पत्थर लिए दौड़े। उन्होंने चारों ओर दल बनाकर श्री रामचंद्रजी को जा घेरा॥7॥

मारहु धरहु जनि जाइ। कटकटहिं पूँछ उठाइ॥
दहँ दिसि लँगूर बिराज। तेहिं मध्य कोसलराज॥8॥
वे पूँछ उठाकर कटकटाते हुए पुकारने लगे, 'मारो, पकड़ो, जाने न पावे'। उनके लंगूर (पूँछ) दसों दिशाओं में शोभा दे रहे हैं और उनके बीच में कोसलराज श्री रामजी हैं॥8॥

छंद :

तेहिं मध्य कोसलराज सुंदर स्याम तन सोभा लही।
जनु इंद्रधनुष अनेक की बर बारि तुंग तमालही॥
प्रभु देखि हरष बिषाद उर सुर बदत जय जय जय करी।
रघुबीर एकहिं तीर कोपि निमेष महुँ माया हरी॥1॥
उनके बीच में कोसलराज का सुंदर श्याम शरीर ऐसी शोभा पा रहा है, मानो ऊँचे तमाल वृक्ष के लिए अनेक इंद्रधनुषों की श्रेष्ठ बाढ़ (घेरा) बनाई गई हो। प्रभु को देखकर देवता हर्ष और विषादयुक्त हृदय से 'जय, जय, जय' ऐसा बोलने लगे। तब श्री रघुवीर ने क्रोध करके एक ही बाण में निमेषमात्र में रावण की सारी माया हर ली॥1॥

माया बिगत कपि भालु हरषे बिटप गिरि गहि सब फिरे।
सर निकर छाड़े राम रावन बाहु सिर पुनि महि गिरे॥
श्रीराम रावन समर चरित अनेक कल्प जो गावहीं।
सत सेष सारद निगम कबि तेउ तदपि पार न पावहीं॥2॥

माया दूर हो जाने पर वानर-भालू हर्षित हुए और वृक्ष तथा पर्वत ले-लेकर सब लौट पड़े। श्री रामजी ने बाणों के समूह छोड़े, जिनसे रावण के हाथ और सिर फिर कट-कटकर पृथ्वी पर गिर पड़े। श्री रामजी और रावण के युद्ध का चरित्र यदि सैकड़ों शेष, सरस्वती, वेद और कवि अनेक कल्पों तक गाते रहें, तो भी उसका पार नहीं पा सकते॥2॥

दोहा :

ताके गुन गन कछु कहे जड़मति तुलसीदास।
जिमि निज बल अनुरूप ते माछी उड़इ अकास॥101 क॥

उसी चरित्र के कुछ गुणगण मंदबुद्धि तुलसीदास ने कहे हैं, जैसे मक्खी भी अपने पुरुषार्थ के अनुसार आकाश में उड़ती है॥101 (क)॥

काटे सिर भुज बार बहु मरत न भट लंकेस।
प्रभु क्रीड़त सुर सिद्ध मुनि ब्याकुल देखि कलेस॥101 ख॥

सिर और भुजाएँ बहुत बार काटी गईं। फिर भी वीर रावण मरता नहीं। प्रभु तो खेल कर रहे हैं, परन्तु मुनि, सिद्ध और देवता उस क्लेश को देखकर (प्रभु को क्लेश पाते समझकर) व्याकुल हैं॥101 (ख)॥

चौपाई :

काटत बढ़हिं सीस समुदाई। जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई॥
मरइ न रिपु श्रम भयउ बिसेषा। राम बिभीषन तन तब देखा॥1॥

काटते ही सिरों का समूह बढ़ जाता है, जैसे प्रत्येक लाभ पर लोभ बढ़ता है। शत्रु मरता नहीं और परिश्रम बहुत हुआ। तब श्री रामचंद्रजी ने विभीषण की ओर देखा॥1॥

उमा काल मर जाकीं ईछा। सो प्रभु जन कर प्रीति परीछा॥
सुनु सरबग्य चराचर नायक। प्रनतपाल सुर मुनि सुखदायक॥2॥

(शिवजी कहते हैं-) हे उमा! जिसकी इच्छा मात्र से काल भी मर जाता है, वही प्रभु सेवक की प्रीति की परीक्षा ले रहे हैं। (विभीषणजी ने कहा-) हे सर्वज्ञ! हे चराचर के स्वामी! हे शरणागत के पालन करने वाले! हे देवता और मुनियों को सुख देने वाले! सुनिए-॥2॥

नाभिकुंड पियूष बस याकें। नाथ जिअत रावनु बल ताकें॥

सुनत बिभीषन बचन कृपाला। हरषि गहे कर बान कराला॥3॥

इसके नाभिकुंड में अमृत का निवास है। हे नाथ! रावण उसी के बल पर जीता है। विभीषण के वचन सुनते ही कृपालु श्री रघुनाथजी ने हर्षित होकर हाथ में विकराल बाण लिए॥3॥

असुभ होन लागे तब नाना। रोवहिं खर सृकाल बहु स्वाना॥
बोलहिं खग जग आरति हेतू। प्रगट भए नभ जहँ तहँ केतू॥4॥

उस समय नाना प्रकार के अपशकुन होने लगे। बहुत से गदहे, स्यार और कुत्ते रोने लगे। जगत् के दुःख (अशुभ) को सूचित करने के लिए पक्षी बोलने लगे। आकाश में जहाँ-तहाँ केतु (पुच्छल तारे) प्रकट हो गए॥4॥

दस दिसि दाह होन अति लागा। भयउ परब बिनु रबि उपरागा॥
मंदोदरि उर कंपति भारी। प्रतिमा स्रवहिं नयन मग बारी॥5॥

दसों दिशाओं में अत्यंत दाह होने लगा (आग लगने लगी) बिना ही पर्व (योग) के सूर्यग्रहण होने लगा। मंदोदरी का हृदय बहुत काँपने लगा। मूर्तियाँ नेत्र मार्ग से जल बहाने लगीं॥5॥

छंद :

प्रतिमा रुदहिं पबिपात नभ अति बात बह डोलति मही।
बरषहिं बलाहक रुधिर कच रज असुभ अति सक को कही॥
उतपात अमित बिलोकि नभ सुर बिकल बोलहिं जय जए।
सुर सभय जानि कृपाल रघुपति चाप सर जोरत भए॥

मूर्तियाँ रोने लगीं, आकाश से वज्रपात होने लगे, अत्यंत प्रचण्ड वायु बहने लगी, पृथ्वी हिलने लगी, बादल रक्त, बाल और धूल की वर्षा करने लगे। इस प्रकार इतने अधिक अमंगल होने लगे कि उनको कौन कह सकता है? अपरिमित उत्पात देखकर आकाश में देवता व्याकुल होकर जय-जय पुकार उठे। देवताओं को भयभीत जानकर कृपालु श्री रघुनाथजी धनुष पर बाण सन्धान करने लगे।

दोहा :

खैंचि सरासन श्रवन लगि छाड़े सर एकतीस।
रघुनायक सायक चले मानहुँ काल फनीस॥102॥

कानों तक धनुष को खींचकर श्री रघुनाथजी ने इकतीस बाण छोड़े। वे श्री रामचंद्रजी के बाण ऐसे चले मानो कालसर्प हों॥102॥

चौपाई :

सायक एक नाभि सर सोषा। अपर लगे भुज सिर करि रोषा॥

लै सिर बाहु चले नाराचा। सिर भुज हीन रुंड महि नाचा॥1॥

एक बाण ने नाभि के अमृत कुंड को सोख लिया। दूसरे तीस बाण कोप करके उसके सिरों और भुजाओं में लगे। बाण सिरों और भुजाओं को लेकर चले। सिरों और भुजाओं से रहित रुण्ड (धड़) पृथ्वी पर नाचने लगा॥1॥

धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा। तब सर हति प्रभु कृत दुइ खंडा॥
गर्जेउ मरत घोर रव भारी। कहाँ रामु रन हतौं पचारी॥2॥

धड़ प्रचण्ड वेग से दौड़ता है, जिससे धरती धँसने लगी। तब प्रभु ने बाण मारकर उसके दो टुकड़े कर दिए। मरते समय रावण बड़े घोर शब्द से गरजकर बोला- राम कहाँ हैं? मैं ललकारकर उनको युद्ध में मारूँ!॥2॥

डोली भूमि गिरत दसकंधर। छुभित सिंधु सरि दिग्गज भूधर॥
धरनि परेउ द्वौ खंड बढ़ाई। चापि भालु मर्कट समुदाई॥3॥

रावण के गिरते ही पृथ्वी हिल गई। समुद्र, नदियाँ, दिशाओं के हाथी और पर्वत क्षुब्ध हो उठे। रावण धड़ के दोनों टुकड़ों को फैलाकर भालू और वानरों के समुदाय को दबाता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा॥3॥

मंदोदरि आगें भुज सीसा। धरि सर चले जहाँ जगदीसा॥
प्रबिसे सब निषंग महुँ जाई। देखि सुरन्ह दुंदुभीं बजाई॥4॥

रावण की भुजाओं और सिरों को मंदोदरी के सामने रखकर रामबाण वहाँ चले, जहाँ जगदीश्वर श्री रामजी थे। सब बाण जाकर तरकस में प्रवेश कर गए। यह देखकर देवताओं ने नगाड़े बजाए॥4॥

तासु तेज समान प्रभु आनन। हरषे देखि संभु चतुरानन॥
जय जय धुनि पूरी ब्रह्मंडा। जय रघुबीर प्रबल भुजदंडा॥5॥

रावण का तेज प्रभु के मुख में समा गया। यह देखकर शिवजी और ब्रह्माजी हर्षित हुए। ब्रह्माण्डभर में जय-जय की ध्वनि भर गई। प्रबल भुजदण्डों वाले श्री रघुवीर की जय हो॥5॥

बरषहिं सुमन देव मुनि बृंदा। जय कृपाल जय जयति मुकुंदा॥6॥

देवता और मुनियों के समूह फूल बरसाते हैं और कहते हैं- कृपालु की जय हो, मुकुन्द की जय हो, जय हो!॥6॥

छंद :

जय कृपा कंद मुकुंद द्वंद हरन सरन सुखप्रद प्रभो।
खल दल बिदारन परम कारन कारुनीक सदा बिभो॥

सुर सुमन बरषहिं हरष संकुल बाज दुंदुभि गहगही।
संग्राम अंगन राम अंग अनंग बहु सोभा लही॥1॥

हे कृपा के कंद! हे मोक्षदाता मुकुन्द! हे (राग-द्वेष, हर्ष-शोक, जन्म-मृत्यु आदि) द्वंद्वों के हरने वाले! हे शरणागत को सुख देने वाले प्रभो! हे दुष्ट दल को विदीर्ण करने वाले! हे कारणों के भी परम कारण! हे सदा करुणा करने वाले! हे सर्वव्यापक विभो! आपकी जय हो। देवता हर्ष में भरे हुए पुष्प बरसाते हैं, घमाघम नगाड़े बज रहे हैं। रणभूमि में श्री रामचंद्रजी के अंगों ने बहुत से कामदेवों की शोभा प्राप्त की॥1॥

सिर जटा मुकुट प्रसून बिच बिच अति मनोहर राजहीं।
जनु नीलगिरि पर तड़ित पटल समेत उडुगन भ्राजहीं॥
भुजदंड सर कोदंड फेरत रुधिर कन तन अति बने।
जनु रायमुनीं तमाल पर बैठीं बिपुल सुख आपने॥2॥

सिर पर जटाओं का मुकुट है, जिसके बीच में अत्यंत मनोहर पुष्प शोभा दे रहे हैं। मानो नीले पर्वत पर बिजली के समूह सहित नक्षत्र सुशोभित हो रहे हैं। श्री रामजी अपने भुजदण्डों से बाण और धनुष फिरा रहे हैं। शरीर पर रुधिर के कण अत्यंत सुंदर लगते हैं। मानो तमाल के वृक्ष पर बहुत सी ललमुनियाँ चिड़ियाँ अपने महान् सुख में मग्न हुई निश्चल बैठी हों॥2॥

दोहा :

कृपादृष्टि करि बृष्टि प्रभु अभय किए सुर बृंद।
भालु कीस सब हरषे जय सुख धाम मुकुंद॥103॥

प्रभु श्री रामचंद्रजी ने कृपा दृष्टि की वर्षा करके देव समूह को निर्भय कर दिया। वानर-भालू सब हर्षित हुए और सुखधाम मुकुन्द की जय हो, ऐसा पुकारने लगे॥103॥

चौपाई :

पति सिर देखत मंदोदरी। मुरुछित बिकल धरनि खसि परी॥
जुबति बृंद रोवत उठि धाईं। तेहि उठाइ रावन पहिं आईं॥1॥

पति के सिर देखते ही मंदोदरी व्याकुल और मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पड़ी। स्त्रियाँ रोती हुई दौड़ीं और उस (मंदोदरी) को उठाकर रावण के पास आईं॥1॥

पति गति देखि ते करहिं पुकारा। छूटे कच नहिं बपुष सँभारा॥
उर ताड़ना करहिं बिधि नाना। रोवत करहिं प्रताप बखाना॥2॥

पति की दशा देखकर वे पुकार-पुकारकर रोने लगीं। उनके बाल खुल गए, देह की संभाल नहीं रही। वे अनेकों प्रकार से छाती पीटती हैं और रोती हुई रावण के प्रताप का बखान करती हैं॥2॥

तव बल नाथ डोल नित धरनी। तेज हीन पावक ससि तरनी॥
सेष कमठ सहि सकहिं न भारा। सो तनु भूमि परेउ भरि छारा॥3॥

(वे कहती हैं-) हे नाथ! तुम्हारे बल से पृथ्वी सदा काँपती रहती थी। अग्नि, चंद्रमा और सूर्य तुम्हारे सामने तेजहीन थे। शेष और कच्छप भी जिसका भार नहीं सह सकते थे, वही तुम्हारा शरीर आज धूल में भरा हुआ पृथ्वी पर पड़ा है!॥3॥

बरुन कुबेर सुरेस समीरा। रन सन्मुख धरि काहुँ न धीरा॥
भुजबल जितेहु काल जम साईं। आजु परेहु अनाथ की नाईं॥4॥

वरुण, कुबेर, इंद्र और वायु, इनमें से किसी ने भी रण में तुम्हारे सामने धैर्य धारण नहीं किया। हे स्वामी! तुमने अपने भुजबल से काल और यमराज को भी जीत लिया था। वही तुम आज अनाथ की तरह पड़े हो॥4॥

जगत बिदित तुम्हारि प्रभुताई। सुत परिजन बल बरनि न जाई॥
राम बिमुख अस हाल तुम्हारा। रहा न कोउ कुल रोवनिहारा॥5॥

तुम्हारी प्रभुता जगत् भर में प्रसिद्ध है। तुम्हारे पुत्रों और कुटुम्बियों के बल का हाय! वर्णन ही नहीं हो सकता। श्री रामचंद्रजी के विमुख होने से तुम्हारी ऐसी दुर्दशा हुई कि आज कुल में कोई रोने वाला भी न रह गया॥5॥

तव बस बिधि प्रचंड सब नाथा। सभय दिसिप नित नावहिं माथा॥
अब तव सिर भुज जंबुक खाहीं। राम बिमुख यह अनुचित नाहीं॥6॥

हे नाथ! विधाता की सारी सृष्टि तुम्हारे वश में थी। लोकपाल सदा भयभीत होकर तुमको मस्तक नवाते थे, किन्तु हाय! अब तुम्हारे सिर और भुजाओं को गीदड़ खा रहे हैं। राम विमुख के लिए ऐसा होना अनुचित भी नहीं है (अर्थात् उचित ही है)॥6॥

काल बिबस पति कहा न माना। अग जग नाथु मनुज करि जाना॥7॥

हे पति! काल के पूर्ण वश में होने से तुमने (किसी का) कहना नहीं माना और चराचर के नाथ परमात्मा को मनुष्य करके जाना॥7॥

छंद :

जान्यो मनुज करि दनुज कानन दहन पावक हरि स्वयं।
जेहि नमत सिव ब्रह्मादि सुर पिय भजेहु नहिं करुनामयं॥
आजन्म ते परद्रोह रत पापौघमय तव तनु अयं।
तुम्हहू दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयं॥

दैत्य रूपी वन को जलाने के लिए अग्निस्वरूप साक्षात् श्री हरि को तुमने मनुष्य करके जाना।

शिव और ब्रह्मा आदि देवता जिनको नमस्कार करते हैं, उन करुणामय भगवान् को हे प्रियतम! तुमने नहीं भजा। तुम्हारा यह शरीर जन्म से ही दूसरों से द्रोह करने में तत्पर तथा पाप समूहमय रहा! इतने पर भी जिन निर्विकार ब्रह्म श्री रामजी ने तुमको अपना धाम दिया, उनको मैं नमस्कार करती हूँ।

दोहा :

अहह नाथ रघुनाथ सम कृपासिंधु नहिं आन।
जोगि बृंद दुर्लभ गति तोहि दीन्हि भगवान॥104॥

अहह! नाथ! श्री रघुनाथजी के समान कृपा का समुद्र दूसरा कोई नहीं है, जिन भगवान् ने तुमको वह गति दी, जो योगि समाज को भी दुर्लभ है॥104॥

चौपाई :

मंदोदरी बचन सुनि काना। सुर मुनि सिद्ध सबन्हि सुख माना॥
अज महेस नारद सनकादी। जे मुनिबर परमारथबादी॥1॥

मंदोदरी के वचन कानों में सुनकर देवता, मुनि और सिद्ध सभी ने सुख माना। ब्रह्मा, महादेव, नारद और सनकादि तथा और भी जो परमार्थवादी (परमात्मा के तत्त्व को जानने और कहने वाले) श्रेष्ठ मुनि थे॥1॥

भरि लोचन रघुपतिहि निहारी। प्रेम मगन सब भए सुखारी॥
रुदन करत देखीं सब नारी। गयउ बिभीषनु मनु दुख भारी॥2॥

वे सभी श्री रघुनाथजी को नेत्र भरकर निरखकर प्रेममग्न हो गए और अत्यंत सुखी हुए। अपने घर की सब स्त्रियों को रोती हुई देखकर विभीषणजी के मन में बड़ा भारी दुःख हुआ और वे उनके पास गए॥2॥

बंधु दसा बिलोकि दुख कीन्हा। तब प्रभु अनुजहि आयसु दीन्हा॥
लछिमन तेहि बहु बिधि समुझायो। बहुरि बिभीषन प्रभु पहिं आयो॥3॥

उन्होंने भाई की दशा देखकर दुःख किया। तब प्रभु श्री रामजी ने छोटे भाई को आज्ञा दी (कि जाकर विभीषण को धैर्य बँधाओ)। लक्ष्मणजी ने उन्हें बहुत प्रकार से समझाया। तब विभीषण प्रभु के पास लौट आए॥3॥

कृपादृष्टि प्रभु ताहि बिलोका। करहु क्रिया परिहरि सब सोका॥
कीन्हि क्रिया प्रभु आयसु मानी। बिधिवत देस काल जियँ जानी॥4॥

प्रभु ने उनको कृपापूर्ण दृष्टि से देखा (और कहा-) सब शोक त्यागकर रावण की अंत्येष्टि क्रिया करो। प्रभु की आज्ञा मानकर और हृदय में देश और काल का विचार करके विभीषणजी ने

विधिपूर्वक सब क्रिया की॥4॥

दोहा :

मंदोदरी आदि सब देह तिलांजलि ताहि।
भवन गईं रघुपति गुन गन बरनत मन माहि॥105॥

मंदोदरी आदि सब स्त्रियाँ उसे (रावण को) तिलांजलि देकर मन में श्री रघुनाथजी के गुण समूहों का वर्णन करती हुई महल को गईं॥105॥

चौपाई :

आइ बिभीषन पुनि सिरु नायो। कृपासिंधु तब अनुज बोलायो॥
तुम्ह कपीस अंगद नल नीला। जामवंत मारुति नयसीला॥1॥
सब मिलि जाहु बिभीषन साथा। सारेहु तिलक कहेउ रघुनाथा॥
पिता बचन मैं नगर न आवउँ। आपु सरिस कपि अनुज पठावउँ॥2॥

सब क्रिया-कर्म करने के बाद विभीषण ने आकर पुनः सिर नवाया। तब कृपा के समुद्र श्री रामजी ने छोटे भाई लक्ष्मणजी को बुलाया। श्री रघुनाथजी ने कहा कि तुम, वानरराज सुग्रीव, अंगद, नल, नील जाम्बवान् और मारुति सब नीतिनिपुण लोग मिलकर विभीषण के साथ जाओ और उन्हें राजतिलक कर दो। पिताजी के वचनों के कारण मैं नगर में नहीं आ सकता। पर अपने ही समान वानर और छोटे भाई को भेजता हूँ॥1-2॥

तुरत चले कपि सुनि प्रभु बचना। कीन्ही जाइ तिलक की रचना॥
सादर सिंहासन बैठारी। तिलक सारि अस्तुति अनुसारी॥3॥

प्रभु के वचन सुनकर वानर तुरंत चले और उन्होंने जाकर राजतिलक की सारी व्यवस्था की। आदर के साथ विभीषण को सिंहासन पर बैठाकर राजतिलक किया और स्तुति की॥3॥

जोरि पानि सबहीं सिर नाए। सहित बिभीषन प्रभु पहिं आए॥
तब रघुबीर बोलि कपि लीन्हे। कहि प्रिय बचन सुखी सब कीन्हे॥4॥

सभी ने हाथ जोड़कर उनको सिर नवाए। तदनन्तर विभीषणजी सहित सब प्रभु के पास आए। तब श्री रघुवीर ने वानरों को बुला लिया और प्रिय वचन कहकर सबको सुखी किया॥4॥

छंद- :

किए सुखी कहि बानी सुधा सम बल तुम्हारें रिपु हयो।
पायो बिभीषन राज तिहुँ पुर जसु तुम्हारो नित नयो॥
मोहि सहित सुभ कीरति तुम्हारी परम प्रीति जो गाइहैं।
संसार सिंधु अपार पार प्रयास बिनु नर पाइहैं॥

भगवान् ने अमृत के समान यह वाणी कहकर सबको सुखी किया कि तुम्हारे ही बल से यह प्रबल शत्रु मारा गया और विभीषण ने राज्य पाया। इसके कारण तुम्हारा यश तीनों लोकों में नित्य नया बना रहेगा। जो लोग मेरे सहित तुम्हारी शुभ कीर्ति को परम प्रेम के साथ गाएँगे, वे बिना ही परिश्रम इस अपार संसार का पार पा जाएँगे।

दोहा :

प्रभु के बचन श्रवन सुनि नहिं अघाहिं कपि पुंज।
बार बार सिर नावहिं गहहिं सकल पद कंज॥106॥

प्रभु के वचन कानों से सुनकर वानर समूह तृप्त नहीं होते। वे सब बार-बार सिर नवाते हैं और चरणकमलों को पकड़ते हैं॥106॥

चौपाई :

पुनि प्रभु बोलि लियउ हनुमाना। लंका जाहु कहेउ भगवाना॥
समाचार जानकिहि सुनावहु। तासु कुसल लै तुम्ह चलि आवहु॥1॥

फिर प्रभु ने हनुमान्‌जी को बुला लिया। भगवान् ने कहा- तुम लंका जाओ। जानकी को सब समाचार सुनाओ और उसका कुशल समाचार लेकर तुम चले आओ॥1॥

तब हनुमंत नगर महुँ आए। सुनि निसिचरीं निसाचर धाए॥
बहु प्रकार तिन्ह पूजा कीन्ही। जनकसुता देखाइ पुनि दीन्ही॥2॥

तब हनुमान्‌जी नगर में आए। यह सुनकर राक्षस-राक्षसी (उनके सत्कार के लिए) दौड़े। उन्होंने बहुत प्रकार से हनुमान्‌जी की पूजा की और फिर श्री जानकीजी को दिखला दिया॥2॥

दूरिहि ते प्रनाम कपि कीन्हा। रघुपति दूत जानकीं चीन्हा॥
कहहु तात प्रभु कृपानिकेता। कुसल अनुज कपि सेन समेता॥3॥

हनुमान्‌जी ने (सीताजी को) दूर से ही प्रणाम किया। जानकीजी ने पहचान लिया कि यह वही श्री रघुनाथजी का दूत है (और पूछा-) हे तात! कहो, कृपा के धाम मेरे प्रभु छोटे भाई और वानरों की सेना सहित कुशल से तो हैं?॥3॥

सब बिधि कुसल कोसलाधीसा। मातु समर जीत्यो दससीसा॥
अबिचल राजु बिभीषन पायो। सुनि कपि बचन हरष उर छायो॥4॥

(हनुमान्‌जी ने कहा-) हे माता! कोसलपति श्री रामजी सब प्रकार से सकुशल हैं। उन्होंने संग्राम में दस सिर वाले रावण को जीत लिया है और विभीषण ने अचल राज्य प्राप्त किया है। हनुमान्‌जी के वचन सुनकर सीताजी के हृदय में हर्ष छा गया॥4॥

छंद- :

अति हरष मन तन पुलक लोचन सजल कह पुनि पुनि रमा।
का देउँ तोहि त्रैलोक महुँ कपि किमपि नहिं बानी समा॥
सुनु मातु मैं पायो अखिल जग राजु आजु न संसयं।
रन जीति रिपुदल बंधु जुत पस्यामि राममनामयं॥

श्री जानकीजी के हृदय में अत्यंत हर्ष हुआ। उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों में (आनंदाश्रुओं का) जल छा गया। वे बार-बार कहती हैं- हे हनुमान्! मैं तुझे क्या दूँ? इस वाणी (समाचार) के समान तीनों लोकों में और कुछ भी नहीं है! (हनुमान्‌जी ने कहा-) हे माता! सुनिए, मैंने आज निःसंदेह सारे जगत् का राज्य पा लिया, जो मैं रण में शत्रु को जीतकर भाई सहित निर्विकार श्री रामजी को देख रहा हूँ।

दोहा :

सुनु सुत सदगुन सकल तव हृदयँ बसहुँ हनुमंत।
सानुकूल कोसलपति रहहुँ समेत अनंत॥107॥

(जानकीजी ने कहा-) हे पुत्र! सुन, समस्त सद्गुण तेरे हृदय में बसें और हे हनुमान्! शेष (लक्ष्मणजी) सहित कोसलपति प्रभु सदा तुझ पर प्रसन्न रहें॥107॥

चौपाई :

अब सोइ जतन करहु तुम्ह ताता। देखौं नयन स्याम मृदु गाता॥
तब हनुमान राम पहिं जाई। जनकसुता कै कुसल सुनाई॥1॥

हे तात! अब तुम वही उपाय करो, जिससे मैं इन नेत्रों से प्रभु के कोमल श्याम शरीर के दर्शन करूँ। तब श्री रामचंद्रजी के पास जाकर हनुमान्‌जी ने जानकीजी का कुशल समाचार सुनाया॥1॥

सुनि संदेसु भानुकुलभूषन। बोलि लिए जुबराज बिभीषन॥
मारुतसुत के संग सिधावहु। सादर जनकसुतहि लै आवहु॥2॥

सूर्य कुलभूषण श्री रामजी ने संदेश सुनकर युवराज अंगद और विभीषण को बुला लिया (और कहा-) पवनपुत्र हनुमान् के साथ जाओ और जानकी को आदर के साथ ले आओ॥2॥

तुरतहिं सकल गए जहँ सीता। सेवहिं सब निसिचरीं बिनीता॥
बेगि बिभीषन तिन्हहि सिखायो। तिन्ह बहु बिधि मज्जन करवायो॥3॥

वे सब तुरंत ही वहाँ गए, जहाँ सीताजी थीं। सब की सब राक्षसियाँ नम्रतापूर्वक उनकी सेवा कर रही थीं। विभीषणजी ने शीघ्र ही उन लोगों को समझा दिया। उन्होंने बहुत प्रकार से सीताजी को स्नान कराया,॥3॥

बहु प्रकार भूषन पहिराए। सिबिका रुचिर साजि पुनि ल्याए॥

ता पर हरषि चढ़ी बैदेही। सुमिरि राम सुखधाम सनेही॥4॥

बहुत प्रकार के गहने पहनाए और फिर वे एक सुंदर पालकी सजाकर ले आए। सीताजी प्रसन्न होकर सुख के धाम प्रियतम श्री रामजी का स्मरण करके उस पर हर्ष के साथ चढ़ीं॥4॥

बेतपानि रच्छक चहु पासा। चले सकल मन परम हुलासा॥
देखन भालु कीस सब आए। रच्छक कोपि निवारन धाए॥5॥

चारों ओर हाथों में छड़ी लिए रक्षक चले। सबके मनों में परम उल्लास (उमंग) है। रीछ-वानर सब दर्शन करने के लिए आए, तब रक्षक क्रोध करके उनको रोकने दौड़े॥5॥

कह रघुबीर कहा मम मानहु। सीतहि सखा पयादें आनहु॥
देखहुँ कपि जननी की नाईं। बिहसि कहा रघुनाथ गोसाईं॥6॥

श्री रघुवीर ने कहा- हे मित्र! मेरा कहना मानो और सीता को पैदल ले आओ, जिससे वानर उसको माता की तरह देखें। गोसाईं श्री रामजी ने हँसकर ऐसा कहा॥6॥

सुनि प्रभु बचन भालु कपि हरषे। नभ ते सुरन्ह सुमन बहु बरषे॥
सीता प्रथम अनल महुँ राखी। प्रगट कीन्हि चह अंतर साखी॥7॥

प्रभु के वचन सुनकर रीछ-वानर हर्षित हो गए। आकाश से देवताओं ने बहुत से फूल बरसाए। सीताजी (के असली स्वरूप) को पहिले अग्नि में रखा था। अब भीतर के साक्षी भगवान् उनको प्रकट करना चाहते हैं॥7॥

दोहा :

तेहि कारन करुनानिधि कहे कछुक दुर्बाद।
सुनत जातुधानीं सब लागीं करै बिषाद॥108॥

इसी कारण करुणा के भंडार श्री रामजी ने लीला से कुछ कड़े वचन कहे, जिन्हे सुनकर सब राक्षसियाँ विषाद करने लगीं॥108॥

चौपाई :

प्रभु के बचन सीस धरि सीता। बोली मन क्रम बचन पुनीता॥
लछिमन होहु धरम के नेगी। पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी॥1॥

प्रभु के वचनों को सिर चढ़ाकर मन, वचन और कर्म से पवित्र श्री सीताजी बोलीं- हे लक्ष्मण! तुम मेरे धर्म के नेगी (धर्माचरण में सहायक) बनो और तुरंत आग तैयार करो॥1॥

सुनि लछिमन सीता कै बानी। बिरह बिबेक धरम निति सानी॥
लोचन सजल जोरि कर दोऊ। प्रभु सन कछु कहि सकत न ओऊ॥2॥

श्री सीताजी की विरह, विवेक, धर्म और नीति से सनी हुई वाणी सुनकर लक्ष्मणजी के नेत्रों में

(विषाद के आँसुओं का) जल भर आया। वे हाथ जोड़े खड़े रहे। वे भी प्रभु से कुछ कह नहीं सकते॥2॥

देखि राम रुख लछिमन धाए। पावक प्रगटि काठ बहु लाए॥
पावक प्रबल देखि बैदेही। हृदयँ हरष नहिं भय कछु तेही॥3॥

फिर श्री रामजी का रुख देखकर लक्ष्मणजी दौड़े और आग तैयार करके बहुत सी लकड़ी ले आए। अग्नि को खूब बढ़ी हुई देखकर जानकीजी के हृदय में हर्ष हुआ। उन्हें भय कुछ भी नहीं हुआ॥3॥

जौं मन बच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं॥
तौ कृसानु सब कै गति जाना। मो कहुँ होउ श्रीखंड समाना॥4॥

(सीताजी ने लीला से कहा-) यदि मन, वचन और कर्म से मेरे हृदय में श्री रघुवीर को छोड़कर दूसरी गति (अन्य किसी का आश्रय) नहीं है, तो अग्निदेव जो सबके मन की गति जानते हैं, (मेरे भी मन की गति जानकर) मेरे लिए चंदन के समान शीतल हो जाएँ॥4॥

छंद- :

श्रीखंड सम पावक प्रबेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली।
जय कोसलेस महेस बंदित चरन रति अति निर्मली॥
प्रतिबिंब अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महुँ जरे।
प्रभु चरित काहुँ न लखे नभ सुर सिद्ध मुनि देखहिं खरे॥1॥

प्रभु श्री रामजी का स्मरण करके और जिनके चरण महादेवजी के द्वारा वंदित हैं तथा जिनमें सीताजी की अत्यंत विशुद्ध प्रीति है, उन कोसलपति की जय बोलकर जानकीजी ने चंदन के समान शीतल हुई अग्नि में प्रवेश किया। प्रतिबिम्ब (सीताजी की छायामूर्ति) और उनका लौकिक कलंक प्रचण्ड अग्नि में जल गए। प्रभु के इन चरित्रों को किसी ने नहीं जाना। देवता, सिद्ध और मुनि सब आकाश में खड़े देखते हैं॥1॥

धरि रूप पावक पानि गहि श्री सत्य श्रुति जग बिदित जो।
जिमि छीरसागर इंदिरा रामहि समर्पी आनि सो॥
सो राम बाम बिभाग राजति रुचिर अति सोभा भली।
नव नील नीरज निकट मानहुँ कनक पंकज की कली॥2॥

तब अग्नि ने शरीर धारण करके वेदों में और जगत् में प्रसिद्ध वास्तविक श्री (सीताजी) का हाथ पकड़ उन्हें श्री रामजी को वैसे ही समर्पित किया जैसे क्षीरसागर ने विष्णु भगवान् को लक्ष्मी समर्पित की थीं। वे सीताजी श्री रामचंद्रजी के वाम भाग में विराजित हुईं। उनकी उत्तम शोभा

अत्यंत ही सुंदर है। मानो नए खिले हुए नीले कमल के पास सोने के कमल की कली सुशोभित हो॥2॥

दोहा :

बरषहिं सुमन हरषि सुर बाजहिं गगन निसान।
गावहिं किंनर सुरबधू नाचहिं चढ़ीं बिमान॥109 क॥

देवता हर्षित होकर फूल बरसाने लगे। आकाश में डंके बजने लगे। किन्नर गाने लगे। विमानों पर चढ़ी अप्सराएँ नाचने लगीं॥109 (क)॥

जनकसुता समेत प्रभु सोभा अमित अपार।
देखि भालु कपि हरषे जय रघुपति सुख सार॥109 ख॥

श्री जानकीजी सहित प्रभु श्री रामचंद्रजी की अपरिमित और अपार शोभा देखकर रीछ-वानर हर्षित हो गए और सुख के सार श्री रघुनाथजी की जय बोलने लगे॥109 (ख)॥

चौपाई :

तब रघुपति अनुसासन पाई। मातलि चलेउ चरन सिरु नाई॥
आए देव सदा स्वारथी। बचन कहहिं जनु परमारथी॥1॥

तब श्री रघुनाथजी की आज्ञा पाकर इंद्र का सारथी मातलि चरणों में सिर नवाकर (रथ लेकर) चला गया। तदनन्तर सदा के स्वार्थी देवता आए। वे ऐसे वचन कह रहे हैं मानो बड़े परमार्थी हों॥1॥

दीन बंधु दयाल रघुराया। देव कीन्हि देवन्ह पर दाया॥
बिस्व द्रोह रत यह खल कामी। निज अघ गयउ कुमारगगामी॥2॥

हे दीनबन्धु! हे दयालु रघुराज! हे परमदेव! आपने देवताओं पर बड़ी दया की। विश्व के द्रोह में तत्पर यह दुष्ट, कामी और कुमार्ग पर चलने वाला रावण अपने ही पाप से नष्ट हो गया॥2॥

तुम्ह समरूप ब्रह्म अबिनासी। सदा एकरस सहज उदासी॥
अकल अगुन अज अनघ अनामय। अजित अमोघसक्ति करुनामय॥3॥

आप समरूप, ब्रह्म, अविनाशी, नित्य, एकरस, स्वभाव से ही उदासीन (शत्रु-मित्र-भावरहित), अखंड, निर्गुण (मायिक गुणों से रहित), अजन्मे, निष्पाप, निर्विकार, अजेय, अमोघशक्ति (जिनकी शक्ति कभी व्यर्थ नहीं जाती) और दयामय हैं॥3॥

मीन कमठ सूकर नरहरी। बामन परसुराम बपु धरी॥
जब जब नाथ सुरन्ह दुखु पायो। नाना तनु धरि तुम्हइँ नसायो॥4॥

आपने ही मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन और परशुराम के शरीर धारण किए। हे नाथ! जब-

जब देवताओं ने दुःख पाया, तब-तब अनेकों शरीर धारण करके आपने ही उनका दुःख नाश किया॥4॥

यह खल मलिन सदा सुरद्रोही। काम लोभ मद रत अति कोही।
अधम सिरोमनि तव पद पावा। यह हमरें मन बिसमय आवा॥5॥

यह दुष्ट मलिन हृदय, देवताओं का नित्य शत्रु, काम, लोभ और मद के परायण तथा अत्यंत क्रोधी था। ऐसे अधमों के शिरोमणि ने भी आपका परम पद पा लिया। इस बात का हमारे मन में आश्चर्य हुआ।।5।।

हम देवता परम अधिकारी। स्वारथ रत प्रभु भगति बिसारी।।
भव प्रबाहँ संतत हम परे। अब प्रभु पाहि सरन अनुसरे॥6॥

हम देवता श्रेष्ठ अधिकारी होकर भी स्वार्थपरायण हो आपकी भक्ति को भुलाकर निरंतर भवसागर के प्रवाह (जन्म-मृत्यु के चक्र) में पड़े हैं। अब हे प्रभो! हम आपकी शरण में आ गए हैं, हमारी रक्षा कीजिए॥6॥

दोहा-

करि बिनती सुर सिद्ध सब रहे जहँ तहँ कर जोरि।
अति सप्रेम तन पुलकि बिधि अस्तुति करत बहोरि॥110॥

विनती करके देवता और सिद्ध सब जहाँ के तहाँ हाथ जोड़े खड़े रहे। तब अत्यंत प्रेम से पुलकित शरीर होकर ब्रह्माजी स्तुति करने लगे-- ॥110॥

छंद-

जय राम सदा सुख धाम हरे। रघुनायक सायक चाप धरे।।
भव बारन दारन सिंह प्रभो। गुन सागर नागर नाथ बिभो॥1॥

हे नित्य सुखधाम और (दुःखों को हरने वाले) हरि! हे धनुष-बाण धारण किए हुए रघुनाथजी! आपकी जय हो। हे प्रभो! आप भव (जन्म-मरण) रूपी हाथी को विदीर्ण करने के लिए सिंह के समान हैं। हे नाथ! हे सर्वव्यापक! आप गुणों के समुद्र और परम चतुर हैं॥1॥

तन काम अनेक अनूप छबी। गुन गावत सिद्ध मुनींद्र कबी।।
जसु पावन रावन नाग महा। खगनाथ जथा करि कोप गहा॥2॥

आपके शरीर की अनेकों कामदेवों के समान, परंतु अनुपम छवि है। सिद्ध, मुनीश्वर और कवि आपके गुण गाते रहते हैं। आपका यश पवित्र है। आपने रावणरूपी महासर्प को गरुड़ की तरह क्रोध करके पकड़ लिया।।2।।

जन रंजन भंजन सोक भयं। गत क्रोध सदा प्रभु बोधमयं।।

अवतार उदार अपार गुनं। महि भार बिभंजन ग्यानघनं।।3।।

हे प्रभो! आप सेवकों को आनंद देने वाले, शोक और भय का नाश करने वाले, सदा क्रोधरहित और नित्य ज्ञान स्वरूप हैं। आपका अवतार श्रेष्ठ, अपार दिव्य गुणों वाला, पृथ्वी का भार उतारने वाला और ज्ञान का समूह है।।3।।

अज ब्यापकमेकमनादि सदा। करुनाकर राम नमामि मुदा।।
रघुबंस बिभूषन दूषन हा। कृत भूप बिभीषन दीन रहा।।4।।

(किंतु अवतार लेने पर भी) आप नित्य, अजन्मा, व्यापक, एक (अद्वितीय) और अनादि हैं। हे करुणा की खान श्रीरामजी! मैं आपको बड़े ही हर्ष के साथ नमस्कार करता हूँ। हे रघुकुल के आभूषण! हे दूषण राक्षस को मारने वाले तथा समस्त दोषों को हरने वाले! विभिषण दीन था, उसे आपने (लंका का) राजा बना दिया।।4।।

गुन ध्यान निधान अमान अजं। नित राम नमामि बिभुं बिरजं।।
भुजदंड प्रचंड प्रताप बलं। खल बृंद निकंद महा कुसलं।।5।।

हे गुण और ज्ञान के भंडार! हे मानरहित! हे अजन्मा, व्यापक और मायिक विकारों से रहित श्रीराम! मैं आपको नित्य नमस्कार करता हूँ। आपके भुजदंडों का प्रताप और बल प्रचंड है। दुष्ट समूह के नाश करने में आप परम निपुण हैं।।5।।

बिनु कारन दीन दयाल हितं। छबि धाम नमामि रमा सहितं।।
भव तारन कारन काज परं। मन संभव दारुन दोष हरं।।6।।

हे बिना ही कारण दीनों पर दया तथा उनका हित करने वाले और शोभा के धाम! मैं श्रीजानकीजी सहित आपको नमस्कार करता हूँ। आप भवसागर से तारने वाले हैं, कारणरूपा प्रकृति और कार्यरूप जगत दोनों से परे हैं और मन से उत्पन्न होने वाले कठिन दोषों को हरने वाले हैं।।6।।

सर चाप मनोहर त्रोन धरं। जलजारुन लोचन भूपबरं।।
सुख मंदिर सुंदर श्रीरमनं। मद मार मुधा ममता समनं।।7।।

आप मनोहर बाण, धनुष और तरकस धारण करने वाले हैं। (लाल) कमल के समान रक्तवर्ण आपके नेत्र हैं। आप राजाओं में श्रेष्ठ, सुख के मंदिर, सुंदर, श्री (लक्ष्मीजी) के वल्लभ तथा मद (अहंकार), काम और झूठी ममता के नाश करने वाले हैं।।7।।

अनवद्य अखंड न गोचर गो। सब रूप सदा सब होइ न गो।।
इति बेद बदंति न दंतकथा। रबि आतप भिन्नमभिन्न जथा।।8।।

आप अनिन्द्य या दोषरहित हैं, अखंड हैं, इंद्रियों के विषय नहीं हैं। सदा सर्वरूप होते हुए भी आप

वह सब कभी हुए ही नहीं, ऐसा वेद कहते हैं। यह (कोई) दंतकथा (कोरी कल्पना) नहीं है। जैसे सूर्य और सूर्य का प्रकाश अलग-अलग हैं और अलग नहीं भी है, वैसे ही आप भी संसार से भिन्न तथा अभिन्न दोनों ही हैं।।8।।

कृतकृत्य बिभो सब बानर ए। निरखंति तनानन सादर ए।।
धिग जीवन देव सरीर हरे। तव भक्ति बिना भव भूलि परे।।9।।

हे व्यापक प्रभो! ये सब वानर कृतार्थ रूप हैं, जो आदरपूर्वक ये आपका मुख देख रहे हैं। (और) हे हरे! हमारे (अमर) जीवन और देव (दिव्य) शरीर को धिक्कार है, जो हम आपकी भक्ति से रहित हुए संसार में (सांसारिक विषयों में) भूले पड़े हैं।।9।।

अब दीनदयाल दया करिऐ। मति मोरि बिभेदकरी हरिऐ।।
जेहि ते बिपरीत क्रिया करिऐ। दुख सो सुख मानि सुखी चरिऐ।।10।।

हे दीनदयालु! अब दया कीजिए और मेरी उस विभेद उत्पन्न करने वाली बुद्धि को हर लीजिए, जिससे मैं विपरीत कर्म करता हूँ और जो दु:ख है, उसे सुख मानकर आनंद से विचरता हूँ।।10।।

खल खंडन मंडन रम्य छमा। पद पंकज सेवित संभु उमा।।
नृप नायक दे बरदानमिदं। चरनांबुज प्रेमु सदा सुभदं।।11।।

आप दुष्टों का खंडन करने वाले और पृथ्वी के रमणीय आभूषण हैं। आपके चरणकमल श्री शिव-पार्वती द्वारा सेवित हैं। हे राजाओं के महाराज! मुझे यह वरदान दीजिए कि आपके चरणकमलों में सदा मेरा कल्याणदायक (अनन्य) प्रेम हो।।11।।

दोहा-

बिनय कीन्ह चतुरानन प्रेम पुलक अति गात।
सोभासिंधु बिलोकत लोचन नहीं अघात।।111।।

इस प्रकार ब्रह्माजी ने अत्यंत प्रेम-पुलकित शरीर से विनती की। शोभा के समुद्र श्रीरामजी के दर्शन करते-करते उनके नेत्र तृप्त ही नहीं होते थे।।111।।

तेहि अवसर दसरथ तहँ आए। तनय बिलोकि नयन जल छाए।।
अनुज सहित प्रभु बंदन कीन्हा। आसिरबाद पिताँ तब दीन्हा।।1 ।।

उसी समय दशरथजी वहाँ आए। पुत्र (श्रीरामजी) को देखकर उनके नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल छा गया। छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित प्रभु ने उनकी वंदना की और तब पिता ने उनको आशीर्वाद दिया।।1।।

तात सकल तव पुन्य प्रभाऊ। जीत्यों अजय निसाचर राऊ।।
सुनि सुत बचन प्रीति अति बाढ़ी। नयन सलिल रोमावलि ठाढ़ी।।2।।

(श्रीरामजी ने कहा-) हे तात! यह सब आपके पुण्यों का प्रभाव है, जो मैंने अजेय राक्षसराज को जीत लिया। पुत्र के वचन सुनकर उनकी प्रीति अत्यंत बढ़ गई। नेत्रों में जल छा गया और रोमावली खड़ी हो गई।।2।।

रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना। चितइ पितहि दीन्हेउ दृढ़ ग्याना।।
ताते उमा मोच्छ नहिं पायो। दसरथ भेद भगति मन लायो।।3।।

श्री रघुनाथजी ने पहले के (जीवितकाल के) प्रेम को विचारकर, पिता की ओर देखकर ही उन्हें अपने स्वरूप का दृढ़ ज्ञान करा दिया। हे उमा! दशरथजी ने भेद-भक्ति में अपना मन लगाया था, इसी से उन्होंने (कैवल्य) मोक्ष नहीं पाया।।3।।

सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं। तिन्ह कहुँ राम भगति निज देहीं।।
बार बार करि प्रभुहि प्रनामा। दसरथ हरषि गए सुरधामा।।4।।

(मायारहित सच्चिदानंदमय स्वरूपभूत दिव्यगुणयुक्त) सगुण स्वरूप की उपासना करने वाले भक्त इस प्रकार मोक्ष लेते भी नहीं। उनको श्रीरामजी अपनी भक्ति देते हैं। प्रभु को (इष्टबुद्धि से) बार-बार प्रणाम करके दशरथजी हर्षित होकर देवलोक को चले गए।।4।।

दोहा-

अनुज जानकी सहित प्रभु कुसल कोसलाधीस।
सोभा देखि हरषि मन अस्तुति कर सुर ईस।।112।।

छोटे भाई लक्ष्मणजी और जानकीजी सहित परम कुशल प्रभु श्रीकोसलाधीश की शोभा देखकर देवराज इंद्र मन में हर्षित होकर स्तुति करने लगे- ।।112।।

छंद -

जय राम सोभा धाम। दायक प्रनत बिश्राम।।
धृत त्रोन बर सर चाप। भुजदंड प्रबल प्रताप।।1।।

शोभा के धाम, शरणागत को विश्राम देने वाले, श्रेष्ठ तरकस, धनुष और बाण धारण किए हुए, प्रबल प्रतापी भुज दंडों वाले श्रीरामचंद्रजी की जय हो! ।।1।।

जय दूषनारि खरारि। मर्दन निसाचर धारि।।
यह दुष्ट मारेउ नाथ। भए देव सकल नाथ।।2।।

हे खरदूषण के शत्रु और राक्षसों की सेना के मर्दन करने वाले! आपकी जय हो! हे नाथ! आपने इस दुष्ट को मारा, जिससे सब देवता सनाथ (सुरक्षित) हो गए।।2।।

जय हरन धरनी भार। महिमा उदार अपार।।
जय रावनारि कृपाल। किए जातुधान बिहाल।।3।।

हे भूमि का भार हरने वाले! हे अपार श्रेष्ठ महिमावाले! आपकी जय हो। हे रावण के शत्रु! हे कृपालु! आपकी जय हो। आपने राक्षसों को बेहाल (तहस-नहस) कर दिया।।3।।

लंकेस अति बल गर्ब। किए बस्य सुर गंधर्ब।।
मुनि सिद्ध नर खग नाग। हठि पं सब कें लाग।।4।।

लंकापति रावण को अपने बल का बहुत घमंड था। उसने देवता और गंधर्व सभी को अपने वश में कर लिया था और वह मुनि, सिद्ध, मनुष्य, पक्षी और नाग आदि सभी के हठपूर्वक (हाथ धोकर) पीछे पड़ गया था।।4।।

परद्रोह रत अति दुष्ट। पायो सो फलु पापिष्ट।।
अब सुनहु दीन दयाल। राजीव नयन बिसाल।।5।।

वह दूसरों से द्रोह करने में तत्पर और अत्यंत दुष्ट था। उस पापी ने वैसा ही फल पाया। अब हे दीनों पर दया करने वाले! हे कमल के समान विशाल नेत्रों वाले! सुनिए।।5।।

मोहि रहा अति अभिमान। नहिं कोउ मोहि समान।।
अब देखि प्रभु पद कंज। गत मान प्रद दुख पुंज।।6।।

मुझे अत्यंत अभिमान था कि मेरे समान कोई नहीं है, पर अब प्रभु (आप) के चरण कमलों के दर्शन करने से दु:ख समूह का देने वाला मेरा वह अभिमान जाता रहा।।6।।

कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव। अब्यक्त जेहि श्रुति गाव।।
मोहि भाव कोसल भूप। श्रीराम सगुन सरूप।।7।।

कोई उन निर्गुन ब्रह्म का ध्यान करते हैं जिन्हें वेद अव्यक्त (निराकार) कहते हैं। परंतु हे रामजी! मुझे तो आपका यह सगुण कोसलराज-स्वरूप ही प्रिय लगता है।।7।।

बैदेहि अनुज समेत। मम हृदयँ करहु निकेत।।
मोहि जानिऐ निज दास। दे भक्ति रमानिवास।।8।।

श्रीजानकीजी और छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित मेरे हृदय में अपना घर बनाइए। हे रमानिवास! मुझे अपना दास समझिए और अपनी भक्ति दीजिए।।8।।

छंद -

दे भक्ति रमानिवास त्रास हरन सरन सुखदायकं।
सुख धाम राम नमामि काम अनेक छबि रघुनायकं।।
सुर बृंद रंजन द्वंद भंजन मनुजतनु अतुलितबलं।
ब्रह्मादि संकर सेब्य राम नमामि करुना कोमलं।।

हे रमानिवास! हे शरणागत के भय को हरने वाले और उसे सब प्रकार का सुख देने वाले! मुझे

अपनी भक्ति दीजिए। हे सुख के धाम! हे अनेकों कामदेवों की छबिवाले रघुकुल के स्वामी श्रीरामचंद्रजी! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे देवसमूह को आनंद देने वाले, (जन्म-मृत्यु, हर्ष-विषाद, सुख-दु:ख आदि) द्वंद्वों के नाश करने वाले, मनुष्य शरीरधारी, अतुलनीय बलवाले, ब्रह्मा और शिव आदि से सेवनीय, करुणा से कोमल श्रीरामजी! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

दोहा -

अब करि कृपा बिलोकि मोहि आयसु देहु कृपाल।
काह करौं सुनि प्रिय बचन बोले दीनदयाल।।113।।

हे कृपालु! अब मेरी ओर कृपा करके (कृपा दृष्टि से) देखकर आज्ञा दीजिए कि मैं क्या (सेवा) करूँ! इंद्र के ये प्रिय वचन सुनकर दीनदयालु श्रीरामजी बोले ।।113।।

चौपाई

सुन सुरपति कपि भालु हमारे। परे भूमि निसिचरन्हि जे मारे।।
मम हित लागि तजे इन्ह प्राना। सकल जिआउ सुरेस सुजाना।।1।।

हे देवराज! सुनो, हमारे वानर-भालू, जिन्हें निशाचरों ने मार डाला है, पृथ्वी पर पड़े हैं। इन्होंने मेरे हित के लिए अपने प्राण त्याग दिए। हे सुजान देवराज! इन सबको जिला दो।।1।।

सुनु खगेस प्रभु कै यह बानी। अति अगाध जानहिं मुनि ग्यानी।।
प्रभु सक त्रिभुअन मारि जिआई। केवल सक्रहि दीन्हि बड़ाई।।2।।

(काकभुशुण्डिजी कहते हैं -) हे गरुड़! सुनिए प्रभु के ये वचन अत्यंत गहन (गूढ़) हैं। ज्ञानी मुनि ही इन्हें जान सकते हैं। प्रभु श्रीरामजी त्रिलोकी को मारकर जिला सकते हैं। यहाँ तो उन्होंने केवल इंद्र को बड़ाई दी है।।2।।

सुधा बरषि कपि भालु जियाए। हरषि उठे सब प्रभु पहिं आए।।
सुधाबृष्टि भै दुहु दल ऊपर। जिए भालु कपि नहिं रजनीचर।।3।।

इंद्र ने अमृत बरसाकर वानर-भालुओं को जिला दिया। सब हर्षित होकर उठे और प्रभु के पास आए। अमृत की वर्षा दोनों ही दलों पर हुई। पर रीछ-वानर ही जीवित हुए, राक्षस नहीं।।3।।

रामाकार भए तिन्ह के मन। मुक्त भए छूट भव बंधन।।
सुर अंसिक सब कपि अरु रीछा। जिए सकल रघुपति कीं ईछा।।4।।

क्योंकि राक्षस के मन तो मरते समय रामाकार हो गए थे। अत: वे मुक्त हो गए, उनके भवबंधन छूट गए। किंतु वानर और भालू तो सब देवांश (भगवान् की लीला के परिकर) थे। इसलिए वे सब श्रीरघुनाथजी की इच्छा से जीवित हो गए।।4।।

राम सरिस को दीन हितकारी। कीन्हे मुकुत निसाचर झारी।।

खल मल धाम काम रत रावन। गति पाई जो मुनिबर पाव न।।5।।

श्रीरामचंद्रजी के समान दीनों का हित करने वाला कौन है? जिन्होंने सारे राक्षसों को मुक्त कर दिया! दुष्ट, पापों के घर और कामी रावण ने भी वह गति पाई जिसे श्रेष्ठ मुनि भी नहीं पाते।।5।।

दोहा -

सुमन बरषि सब सुर चले चढ़ि चढ़ि रुचिर बिमान।

देखि सुअवसर प्रभु पहिं आयउ संभु सुजान।।114।। (क) ।।

फूलों की वर्षा करके सब देवता सुंदर विमानों पर चढ़-चढ़कर चले। तब सुअवसर जानकार सुजान शिवजी प्रभु श्रीरामचंद्रजी के पास आए- ।।114 (क)।।

परम प्रीति कर जोरि जुग नलिन नयन भरि बारि।

पुलकित तन गदगद गिराँ बिनय करत त्रिपुरारि।। 114 (ख)।।

और परम प्रेम से दोनों हाथ जोड़कर, कमल के समान नेत्रों में जल भरकर, पुलकित शरीर और गद्‌गद्‌ वाणी से त्रिपुरारी शिवजी विनती करने लगे - ।।114 (ख) ।।

छंद

मामभिरक्षय रघुकुल नायक। धृत बर चाप रुचिर कर सायक।।

मोह महा घन पटल प्रभंजन। संसय बिपिन अनल सुर रंजन।।1।।

हे रघुकुल के स्वामी! सुंदर हाथों में श्रेष्ठ धनुष और सुंदर बाण धारण किए हुए आप मेरी रक्षा कीजिए। आप महामोहरूपी मेघसमूह के (उड़ाने के) लिए प्रचंड पवन हैं, संशयरूपी वन के (भस्म करने के) लिए अग्नि हैं और देवताओं को आनंद देने वाले हैं।।1।।

अगुन सगुन गुन मंदिर सुंदर। भ्रम तम प्रबल प्रताप दिवाकर।।

काम क्रोध मद गज पंचानन। बसहु निरंतर जन मन कानन।।2।।

आप निर्गुण, सगुण, दिव्य गुणों के धाम और परम सुंदर हैं। भ्रमरूपी अंधकार के (नाश के) लिए प्रबल प्रतापी सूर्य हैं। काम, क्रोध और मदरूपी हाथियों के (वध के) लिए सिंह के समान आप इस सेवक के मनरूपी वन में निरंतर वास कीजिए।।2।।

बिषय मनोरथ पुंज कुंज बन। प्रबल तुषार उदार पार मन।।

भव बारिधि मंदर परमं दर। बारय तारय संसृति दुस्तर।।3।।

विषयकामनाओं के समूह रूपी कमलवन के (नाश के) लिए आप प्रबल पाला हैं, आप उदार और मन से परे हैं। भवसागर (को मथने) के लिए आप मंदराचल पर्वत हैं। आप हमारे परम भय को दूर कीजिए और हमें दुस्तर संसार सागर से पार कीजिए।।3।।

स्याम गात राजीव बिलोचन। दीन बंधु प्रनतारति मोचन।।

अनुज जानकी सहित निरंतर। बसहु राम नृप मम उर अंतर।।
मुनि रंजन महि मंडल मंडन। तुलसिदास प्रभु त्रास बिखंडन।। 4-5।।

हे श्यामसुंदर-शरीर! हे कमलनयन! हे दीनबंधु! हे शरणागत को दु:ख से छुड़ाने वाले! हे राजा रामचंद्रजी! आप छोटे भाई लक्ष्मण और जानकीजी सहित निरंतर मेरे हृदय के अंदर निवास कीजिए। आप मुनियों को आनंद देने वाले, पृथ्वीमंडल के भूषण, तुलसीदास के प्रभु और भय का नाश करने वाले हैं।। 4-5।।

दोहा

नाथ जबहिं कोसलपुरीं होइहि तिलक तुम्हार।
कृपासिंधु मैं आउब देखन चरित उदार ।।115।।

हे नाथ! जब अयोध्यापुरी में आपका राजतिलक होगा, तब हे कृपासागर! मैं आपकी उदार लीला देखने आऊँगा ।।115।।

चौपाई :

करि बिनती जब संभु सिधाए। तब प्रभु निकट बिभीषनु आए॥
नाइ चरन सिरु कह मृदु बानी। बिनय सुनहु प्रभु सारँगपानी॥1॥

जब शिवजी विनती करके चले गए, तब विभीषणजी प्रभु के पास आए और चरणों में सिर नवाकर कोमल वाणी से बोले- हे शार्ंग धनुष के धारण करने वाले प्रभो! मेरी विनती सुनिए-॥1॥

सकुल सदल प्रभु रावन मार्‌यो। पावन जस त्रिभुवन विस्तार्‌यो॥
दीन मलीन हीन मति जाती। मो पर कृपा कीन्हि बहु भाँती॥2॥

आपने कुल और सेना सहित रावण का वध किया, त्रिभुवन में अपना पवित्र यश फैलाया और मुझ दीन, पापी, बुद्धिहीन और जातिहीन पर बहुत प्रकार से कृपा की॥2॥

अब जन गृह पुनीत प्रभु कीजे। मज्जन करिअ समर श्रम छीजे॥
देखि कोस मंदिर संपदा। देहु कृपाल कपिन्ह कहुँ मुदा॥3॥

अब हे प्रभु! इस दास के घर को पवित्र कीजिए और वहाँ चलकर स्नान कीजिए, जिससे युद्ध की थकावट दूर हो जाए। हे कृपालु! खजाना, महल और सम्पत्ति का निरीक्षण कर प्रसन्नतापूर्वक वानरों को दीजिए॥3॥

सब बिधि नाथ मोहि अपनाइअ। पुनि मोहि सहित अवधपुर जाइअ॥
सुनत बचन मृदु दीनदयाला। सजल भए द्वौ नयन बिसाला॥4॥

हे नाथ! मुझे सब प्रकार से अपना लीजिए और फिर हे प्रभो! मुझे साथ लेकर अयोध्यापुरी को पधारिए। विभीषणजी के कोमल वचन सुनते ही दीनदयालु प्रभु के दोनों विशाल नेत्रों में

(प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया॥4॥

दोहा :

तोर कोस गृह मोर सब सत्य बचन सुनु भ्रात।
भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कल्प सम जात॥116 क॥

(श्री रामजी ने कहा-) हे भाई! सुनो, तुम्हारा खजाना और घर सब मेरा ही है, यह सच बात है। पर भरत की दशा याद करके मुझे एक-एक पल कल्प के समान बीत रहा है॥116 (क)॥

तापस बेष गात कृस जपत निरंतर मोहि।
देखौं बेगि सो जतनु करु सखा निहोरउँ तोहि॥116 ख॥

तपस्वी के वेष में कृश (दुबले) शरीर से निरंतर मेरा नाम जप कर रहे हैं। हे सखा! वही उपाय करो जिससे मैं जल्दी से जल्दी उन्हें देख सकूँ। मैं तुमसे निहोरा (अनुरोध) करता हूँ॥116 (ख)॥

बीतें अवधि जाउँ जौं जिअत न पावउँ बीर।
सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु पुनि पुनि पुलक सरीर॥116 ग॥

यदि अवधि बीत जाने पर जाता हूँ तो भाई को जीता न पाऊँगा। छोटे भाई भरतजी की प्रीति का स्मरण करके प्रभु का शरीर बार-बार पुलकित हो रहा है॥116 (ग)॥

करेहु कल्प भरि राजु तुम्ह मोहि सुमिरेहु मन माहिं।
पुनि मम धाम पाइहहु जहाँ संत सब जाहिं॥116 घ॥

(श्री रामजी ने फिर कहा-) हे विभीषण! तुम कल्पभर राज्य करना, मन में मेरा निरंतर स्मरण करते रहना। फिर तुम मेरे उस धाम को पा जाओगे, जहाँ सब संत जाते हैं॥116 (घ)॥

चौपाई :

सुनत बिभीषन बचन राम के। हरषि गहे पद कृपाधाम के॥
बानर भालु सकल हरषाने। गहि प्रभु पद गुन बिमल बखाने॥1॥

श्री रामचंद्रजी के वचन सुनते ही विभीषणजी ने हर्षित होकर कृपा के धाम श्री रामजी के चरण पकड़ लिए। सभी वानर-भालू हर्षित हो गए और प्रभु के चरण पकड़कर उनके निर्मल गुणों का बखान करने लगे॥1॥

बहुरि विभीषन भवन सिधायो। मनि गन बसन बिमान भरायो॥
लै पुष्पक प्रभु आगें राखा। हँसि करि कृपासिंधु तब भाषा॥2॥

फिर विभीषणजी महल को गए और उन्होंने मणियों के समूहों (रत्नों) से और वस्त्रों से विमान को भर लिया। फिर उस पुष्पक विमान को लाकर प्रभु के सामने रखा। तब कृपासागर श्री रामजी ने हँसकर कहा-॥2॥

चढ़ि बिमान सुनु सखा बिभीषन। गगन जाइ बरषहु पट भूषन॥
नभ पर जाइ बिभीषन तबही। बरषि दिए मनि अंबर सबही॥3॥

हे सखा विभीषण! सुनो, विमान पर चढ़कर, आकाश में जाकर वस्त्रों और गहनों को बरसा दो। तब (आज्ञा सुनते) ही विभीषणजी ने आकाश में जाकर सब मणियों और वस्त्रों को बरसा दिया॥3॥

जोइ जोइ मन भावइ सोइ लेहीं। मनि मुख मेलि डारि कपि देहीं॥
हँसे रामु श्री अनुज समेता। परम कौतुकी कृपा निकेता॥4॥

जिसके मन को जो अच्छा लगता है, वह वही ले लेता है। मणियों को मुँह में लेकर वानर फिर उन्हें खाने की चीज न समझकर उगल देते हैं। यह तमाशा देखकर परम विनोदी और कृपा के धाम श्री रामजी, सीताजी और लक्ष्मणजी सहित हँसने लगे॥4॥

दोहा:

मुनि जेहि ध्यान न पावहिं नेति नेति कह बेद।
कृपासिंधु सोइ कपिन्ह सन करत अनेक बिनोद॥117 क॥

जिनको मुनि ध्यान में भी नहीं पाते, जिन्हें वेद नेति-नेति कहते हैं, वे ही कृपा के समुद्र श्री रामजी वानरों के साथ अनेकों प्रकार के विनोद कर रहे हैं॥117 (क)॥

उमा जोग जप दान तप नाना मख ब्रत नेम।
राम कृपा नहिं करहिं तसि जसि निष्केवल प्रेम॥117 ख॥

(शिवजी कहते हैं-) हे उमा! अनेकों प्रकार के योग, जप, दान, तप, यज्ञ, व्रत और नियम करने पर भी श्री रामचंद्रजी वैसी कृपा नहीं करते जैसी अनन्य प्रेम होने पर करते हैं॥117 (ख)॥

चौपाई :

भालु कपिन्ह पट भूषन पाए। पहिरि पहिरि रघुपति पहिं आए॥
नाना जिनस देखि सब कीसा। पुनि पुनि हँसत कोसलाधीसा॥1॥

भालुओं और वानरों ने कपड़े-गहने पाए और उन्हें पहन-पहनकर वे श्री रघुनाथजी के पास आए। अनेकों जातियों के वानरों को देखकर कोसलपति श्री रामजी बार-बार हँस रहे हैं॥1॥

चितइ सबन्हि पर कीन्ही दाया। बोले मृदुल बचन रघुराया॥
तुम्हरें बल मैं रावनु मार्‌यो। तिलक बिभीषन कहँ पुनि सार्‌यो॥2॥

श्री रघुनाथजी ने कृपा दृष्टि से देखकर सब पर दया की। फिर वे कोमल वचन बोले- हे भाइयो! तुम्हारे ही बल से मैंने रावण को मारा और फिर विभीषण का राजतिलक किया॥2॥

निज निज गृह अब तुम्ह सब जाहू। सुमिरेहु मोहि डरपहु जनि काहू॥

सुनत बचन प्रेमाकुल बानर। जोरि पानि बोले सब सादर॥3॥

अब तुम सब अपने-अपने घर जाओ। मेरा स्मरण करते रहना और किसी से डरना नहीं। ये वचन सुनते ही सब वानर प्रेम में विह्वल होकर हाथ जोड़कर आदरपूर्वक बोले-॥3॥

प्रभु जोइ कहहु तुम्हहि सब सोहा। हमरें होत बचन सुनि मोहा॥
दीन जानि कपि किए सनाथा। तुम्ह त्रैलोक ईस रघुनाथा॥4॥

प्रभो! आप जो कुछ भी कहें, आपको सब सोहता है। पर आपके वचन सुनकर हमको मोह होता है। हे रघुनाथजी! आप तीनों लोकों के ईश्वर हैं। हम वानरों को दीन जानकर ही आपने सनाथ (कृतार्थ) किया है॥4॥

सुनि प्रभु बचन लाज हम मरहीं। मसक कहूँ खगपति हित करहीं॥
देखि राम रुख बानर रीछा। प्रेम मगन नहिं गृह कै ईछा॥5॥

प्रभु के (ऐसे) वचन सुनकर हम लाज के मारे मरे जा रहे हैं। कहीं मच्छर भी गरुड़ का हित कर सकते हैं? श्री रामजी का रुख देखकर रीछ-वानर प्रेम में मग्न हो गए। उनकी घर जाने की इच्छा नहीं है॥5॥

दोहा :

प्रभु प्रेरित कपि भालु सब राम रूप उर राखि।
हरष बिषाद सहित चले बिनय बिबिध बिधि भाषि॥118 क॥

परन्तु प्रभु की प्रेरणा (आज्ञा) से सब वानर-भालू श्री रामजी के रूप को हृदय में रखकर और अनेकों प्रकार से विनती करके हर्ष और विषाद सहित घर को चले॥118 (क)॥

कपिपति नील रीछपति अंगद नल हनुमान।
सहित बिभीषन अपर जे जूथप कपि बलवान॥118 ख॥

वानरराज सुग्रीव, नील, ऋक्षराज जाम्बवान्, अंगद, नल और हनुमान् तथा विभीषण सहित और जो बलवान् वानर सेनापति हैं,॥118 (ख)॥

कहि न सकहिं कछु प्रेम बस भरि भरि लोचन बारि॥
सन्मुख चितवहिं राम तन नयन निमेष निवारि॥118 ग॥

वे कुछ कह नहीं सकते, प्रेमवश नेत्रों में जल भर-भरकर, नेत्रों का पलक मारना छोड़कर (टकटकी लगाए) सम्मुख होकर श्री रामजी की ओर देख रहे हैं॥118 (ग)॥

चौपाई :

अतिसय प्रीति देखि रघुराई। लीन्हे सकल बिमान चढ़ाई॥
मन महुँ बिप्र चरन सिरु नायो। उत्तर दिसिहि बिमान चलायो॥1॥

श्री रघुनाथजी ने उनका अतिशय प्रेम देखकर सबको विमान पर चढ़ा लिया। तदनन्तर मन ही मन विप्रचरणों में सिर नवाकर उत्तर दिशा की ओर विमान चलाया॥1॥

चलत बिमान कोलाहल होई। जय रघुबीर कहइ सबु कोई॥
सिंहासन अति उच्च मनोहर। श्री समेत प्रभु बैठे ता पर॥2॥

विमान के चलते समय बड़ा शोर हो रहा है। सब कोई श्री रघुवीर की जय कह रहे हैं। विमान में एक अत्यंत ऊँचा मनोहर सिंहासन है। उस पर सीताजी सहित प्रभु श्री रामचंद्रजी विराजमान हो गए॥2॥

राजत रामु सहित भामिनी। मेरु सृंग जनु घन दामिनी॥
रुचिर बिमानु चलेउ अति आतुर। कीन्ही सुमन बृष्टि हरषे सुर॥3॥

पत्नी सहित श्री रामजी ऐसे सुशोभित हो रहे हैं मानो सुमेरु के शिखर पर बिजली सहित श्याम मेघ हो। सुंदर विमान बड़ी शीघ्रता से चला। देवता हर्षित हुए और उन्होंने फूलों की वर्षा की॥3॥

परम सुखद चलि त्रिबिध बयारी। सागर सर सरि निर्मल बारी॥
सगुन होहिं सुंदर चहुँ पासा। मन प्रसन्न निर्मल नभ आसा॥4॥

अत्यंत सुख देने वाली तीन प्रकार की (शीतल, मंद, सुगंधित) वायु चलने लगी। समुद्र, तालाब और नदियों का जल निर्मल हो गया। चारों ओर सुंदर शकुन होने लगे। सबके मन प्रसन्न हैं, आकाश और दिशाएँ निर्मल हैं॥4॥

कह रघुबीर देखु रन सीता। लछिमन इहाँ हत्यो इँद्रजीता॥
हनूमान अंगद के मारे। रन महि परे निसाचर भारे॥5॥

श्री रघुवीरजी ने कहा- हे सीते! रणभूमि देखो। लक्ष्मण ने यहाँ इंद्र को जीतने वाले मेघनाद को मारा था। हनुमान् और अंगद के मारे हुए ये भारी-भारी निशाचर रणभूमि में पड़े हैं॥5॥

कुंभकरन रावन द्वौ भाई। इहाँ हते सुर मुनि दुखदाई॥6॥

देवताओं और मुनियों को दुःख देने वाले कुंभकर्ण और रावण दोनों भाई यहाँ मारे गए॥6॥

दोहा :

इहाँ सेतु बाँध्यों अरु थापेउँ सिव सुख धाम।
सीता सहित कृपानिधि संभुहि कीन्ह प्रनाम॥119 क॥

मैंने यहाँ पुल बाँधा (बँधवाया) और सुखधाम श्री शिवजी की स्थापना की। तदनन्तर कृपानिधान श्री रामजी ने सीताजी सहित श्री रामेश्वर महादेव को प्रणाम किया॥119 (क)॥

जहँ जहँ कृपासिंधु बन कीन्ह बास बिश्राम।
सकल देखाए जानकिहि कहे सबन्हि के नाम॥119 ख॥

वन में जहाँ-तहाँ करुणा सागर श्री रामचंद्रजी ने निवास और विश्राम किया था, वे सब स्थान प्रभु ने जानकीजी को दिखलाए और सबके नाम बतलाए॥119 (ख)॥

चौपाई :

तुरत बिमान तहाँ चलि आवा। दंडक बन जहँ परम सुहावा॥
कुंभजादि मुनिनायक नाना। गए रामु सब कें अस्थाना॥1॥

विमान शीघ्र ही वहाँ चला आया, जहाँ परम सुंदर दण्डकवन था और अगस्त्य आदि बहुत से मुनिराज रहते थे। श्री रामजी इन सबके स्थानों में गए॥1॥

सकल रिषिन्ह सन पाइ असीसा। चित्रकूट आए जगदीसा॥
तहँ करि मुनिन्ह केर संतोषा। चला बिमानु तहाँ ते चोखा॥2॥

संपूर्ण ऋषियों से आशीर्वाद पाकर जगदीश्वर श्री रामजी चित्रकूट आए। वहाँ मुनियों को संतुष्ट किया। (फिर) विमान वहाँ से आगे तेजी के साथ चला॥2॥

बहुरि राम जानकिहि देखाई। जमुना कलि मल हरनि सुहाई॥
पुनि देखी सुरसरी पुनीता। राम कहा प्रनाम करु सीता॥3॥

फिर श्री रामजी ने जानकीजी को कलियुग के पापों का हरण करने वाली सुहावनी यमुनाजी के दर्शन कराए। फिर पवित्र गंगाजी के दर्शन किए। श्री रामजी ने कहा- हे सीते! इन्हें प्रणाम करो॥3॥

तीरथपति पुनि देखु प्रयागा। निरखत जन्म कोटि अघ भागा॥
देखु परम पावनि पुनि बेनी। हरनि सोक हरि लोक निसेनी॥4॥
पुनि देखु अवधपुरि अति पावनि। त्रिबिध ताप भव रोग नसावनि॥5॥

फिर तीर्थराज प्रयाग को देखो, जिसके दर्शन से ही करोड़ों जन्मों के पाप भाग जाते हैं। फिर परम पवित्र त्रिवेणीजी के दर्शन करो, जो शोकों को हरने वाली और श्री हरि के परम धाम (पहुँचने) के लिए सीढ़ी के समान है। फिर अत्यंत पवित्र अयोध्यापुरी के दर्शन करो, जो तीनों प्रकार के तापों और भव (आवागमन रूपी) रोग का नाश करने वाली है॥4-5॥

दोहा :

सीता सहित अवध कहुँ कीन्ह कृपाल प्रनाम।
सजल नयन तन पुलकित पुनि पुनि हरषित राम॥120 क॥

यों कहकर कृपालु श्री रामजी ने सीताजी सहित अवधपुरी को प्रणाम किया। सजल नेत्र और पुलकित शरीर होकर श्री रामजी बार-बार हर्षित हो रहे हैं॥120 (क)॥

पुनि प्रभु आइ त्रिबेनीं हरषित मज्जनु कीन्ह।

कपिन्ह सहित बिप्रन्ह कहुँ दान बिबिध बिधि दीन्ह॥120 ख॥

फिर त्रिवेणी में आकर प्रभु ने हर्षित होकर स्नान किया और वानरों सहित ब्राह्मणों को अनेकों प्रकार के दान दिए॥120 (ख)॥

चौपाई :

प्रभु हनुमंतहि कहा बुझाई। धरि बटु रूप अवधपुर जाई॥
भरतहि कुसल हमारि सुनाएहु। समाचार लै तुम्ह चलि आएहु॥1॥

तदनन्तर प्रभु ने हनुमान्‌जी को समझाकर कहा- तुम ब्रह्मचारी का रूप धरकर अवधपुरी को जाओ। भरत को हमारी कुशल सुनाना और उनका समाचार लेकर चले आना॥1॥

तुरत पवनसुत गवनत भयऊ। तब प्रभु भरद्वाज पहिं गयऊ॥
नाना बिधि मुनि पूजा कीन्ही। अस्तुति करि पुनि आसिष दीन्ही॥2॥

पवनपुत्र हनुमान्‌जी तुरंत ही चल दिए। तब प्रभु भरद्वाजजी के पास गए। मुनि ने (इष्ट बुद्धि से) उनकी अनेकों प्रकार से पूजा की और स्तुति की और फिर (लीला की दृष्टि से) आशीर्वाद दिया॥2॥

मुनि पद बंदि जुगल कर जोरी। चढ़ि बिमान प्रभु चले बहोरी॥
इहाँ निषाद सुना प्रभु आए। नाव नाव कहँ लोग बोलाए॥3॥

दोनों हाथ जोड़कर तथा मुनि के चरणों की वंदना करके प्रभु विमान पर चढ़कर फिर (आगे) चले। यहाँ जब निषादराज ने सुना कि प्रभु आ गए, तब उसने 'नाव कहाँ है? नाव कहाँ है?' पुकारते हुए लोगों को बुलाया॥3॥

सुरसरि नाघि जान तब आयो। उतरेउ तट प्रभु आयसु पायो॥
तब सीताँ पूजी सुरसरी। बहु प्रकार पुनि चरनन्हि परी॥4॥

इतने में ही विमान गंगाजी को लाँघकर (इस पार) आ गया और प्रभु की आज्ञा पाकर वह किनारे पर उतरा। तब सीताजी बहुत प्रकार से गंगाजी की पूजा करके फिर उनके चरणों पर गिरीं॥4॥

दीन्हि असीस हरषि मन गंगा। सुंदरि तव अहिवात अभंगा॥
सुनत गुहा धायउ प्रेमाकुल। आयउ निकट परम सुख संकुल॥5॥

गंगाजी ने मन में हर्षित होकर आशीर्वाद दिया- हे सुंदरी! तुम्हारा सुहाग अखंड हो। भगवान् के तट पर उतरने की बात सुनते ही निषादराज गुह प्रेम में विह्वल होकर दौड़ा। परम सुख से परिपूर्ण होकर वह प्रभु के समीप आया,॥5॥

प्रभुहि सहित बिलोकि बैदेही। परेउ अवनि तन सुधि नहिं तेही॥

प्रीति परम बिलोकि रघुराई। हरषि उठाइ लियो उर लाई॥6॥

और श्री जानकीजी सहित प्रभु को देखकर वह (आनंद-समाधि में मग्न होकर) पृथ्वी पर गिर पड़ा, उसे शरीर की सुधि न रही। श्री रघुनाथजी ने उसका परम प्रेम देखकर उसे उठाकर हर्ष के साथ हृदय से लगा लिया॥6॥

छंद- :

लियो हृदयँ लाइ कृपा निधान सुजान रायँ रमापति।
बैठारि परम समीप बूझी कुसल सो कर बीनती॥
अब कुसल पद पंकज बिलोकि बिरंचि संकर सेब्य जे।
सुख धाम पूरनकाम राम नमामि राम नमामि ते॥1॥

सुजानों के राजा (शिरोमणि), लक्ष्मीकांत, कृपानिधान भगवान् ने उसको हृदय से लगा लिया और अत्यंत निकट बैठकर कुशल पूछी। वह विनती करने लगा- आपके जो चरणकमल ब्रह्माजी और शंकरजी से सेवित हैं, उनके दर्शन करके मैं अब सकुशल हूँ। हे सुखधाम! हे पूर्णकाम श्री रामजी! मैं आपको नमस्कार करता हूँ, नमस्कार करता हूँ॥1॥

सब भाँति अधम निषाद सो हरि भरत ज्यों उर लाइयो।
मतिमंद तुलसीदास सो प्रभु मोह बस बिसराइयो॥
यह रावनारि चरित्र पावन राम पद रतिप्रद सदा।
कामादिहर बिग्यानकर सुर सिद्ध मुनि गावहिं मुदा॥2॥

सब प्रकार से नीच उस निषाद को भगवान् ने भरतजी की भाँति हृदय से लगा लिया। तुलसीदासजी कहते हैं- इस मंदबुद्धि ने (मैंने) मोहवश उस प्रभु को भुला दिया। रावण के शत्रु का यह पवित्र करने वाला चरित्र सदा ही श्री रामजी के चरणों में प्रीति उत्पन्न करने वाला है। यह कामादि विकारों को हरने वाला और (भगवान् के स्वरूप का) विशेष ज्ञान उत्पन्न करने वाला है। देवता, सिद्ध और मुनि आनंदित होकर इसे गाते हैं॥2॥

दोहा :

समर बिजय रघुबीर के चरित जे सुनहिं सुजान।
बिजय बिबेक बिभूति नित तिन्हहि देहिं भगवान॥121 क॥

जो सुजान लोग श्री रघुवीर की समर विजय संबंधी लीला को सुनते हैं, उनको भगवान् नित्य विजय, विवेक और विभूति (ऐश्वर्य) देते हैं॥।121 (क)॥

यह कलिकाल मलायतन मन करि देखु बिचार।
श्री रघुनाथ नाम तजि नाहिन आन अधार॥121 ख॥

अरे मन! विचार करके देख! यह कलिकाल पापों का घर है। इसमें श्री रघुनाथजी के नाम को छोड़कर (पापों से बचने के लिए) दूसरा कोई आधार नहीं है॥121 (ख)॥

मासपारायण, सत्ताईसवाँ विश्राम

इति श्रीमद्रामचरितमानसे
सकलकलिकलुषविध्वंसने षष्ठः सोपानः समाप्तः।
कलियुग के समस्त पापों का नाश करने वाले श्री रामचरित मानस का यह छठा सोपान समाप्त हुआ।(लंकाकाण्ड समाप्त)